प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन,
गोरखपुर

प्रथम संस्करण, जुलाई १९६१

मूल्य
६ ५०

रेखाचित्र
श्री शिवकुमार गोयल

मुद्रक
अग्रवाल प्रेस,
इलाहाबाद

अपने
प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एव संस्कृति विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय
के
स्नेही सहयोगियो और मित्रा
को

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

मानचित्र-सूची

मानचित्र | पृष्ठ

तालिका-सूची

तालिका | पृष्ठ

दो शब्द

भारत मे प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियो का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन अभी प्रारम्भ ही हुआ है। इस कार्य मे सबसे बडी बाधा भारतीय भाषाओ मे इस विषय पर पुस्तको का अभाव है। यहाँ तक कि भारतीय प्रागैतिहासिक युग पर भी अधिकाश शोध-ग्रन्थ केवल आँग्ल भाषा मे ही उपलब्ध हैं। इस कठिनाई को दूर करने मे कुछ सहायता देने की भावना से प्रेरित होकर मैंने इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का साहस किया है। इसमे, जहाँ तक सम्भव हो सका है, नवीनतम गवेषणाओ से प्रकाश मे आये तथ्यो को समाविष्ट कर दिया गया है।

इस पुस्तक के प्रणयन मे मुझे अनेक महानुभावों से प्रेरणा एव सहयोग मिला है। सर्वप्रथम मैं डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का अभिनन्दन करता हूँ, जो इस पुस्तक के लिखने मे ही नहीं वरन् मेरे सम्पूर्ण भाव-जगत् के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। उन्होंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि देखने और भूमिका लिखने की कृपा की है, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एव संस्कृति विभाग के मेरे सहयोगियो और बन्धुओ ने पुस्तक की पाण्डुलिपि देखकर समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव एव परामर्श दिये, इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। श्री विजयबहादुर राव ने अनुक्रमणिका तैयार करने मे सहायता दी, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। विश्वविद्यालय प्रकाशन के अधिकारी श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने इसका प्रकाशन बडी शीघ्रता और प्रसन्नता से किया, एतदर्थ मैं उनको धन्यवाद देता हूँ।

पुस्तक मे दिया गया अल्तमीरा गुफा से प्राप्त बाइसन (*Bison*) का चित्र अमेरिकन म्यूजियम ऑव नेचुरल हिस्टरी के सौजन्य से उपलब्ध हो सका है, इसके लिए मैं उक्त सस्था का ऋणी हूँ। रेखाचित्र और मानचित्र मेरे अनुज शिवकुमार ने एशलेमोन्टेगू की 'मेन-हिज फर्स्ट मिलियन ईयर्स', केनिथ पी० ओकले की 'मेन द टूल मेकर', एम० सी० बर्किट की 'द ओल्ड स्टोन एज', ह्वीलर की 'द अर्ली इन्डिया एण्ड पाकिस्तान', गॉर्डन चाइल्ड की 'न्यू लाइट ऑन द मोस्ट एन्श्यट ईस्ट' तथा अन्य अनेक पाश्चात्य पुरातत्त्ववेत्ताओ के ग्रन्थो मे दिये हुए चित्रो और मानचित्रो की सहायता से बनाये है। मैं उक्त विद्वानों के प्रति असीम आभार प्रकट करता हूँ। प्रिय शिवकुमार ने चित्र और मानचित्र बनाने मे ही नही वरन् पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने मे भी लगन के साथ कार्य किया, इसके लिए वह प्रशसा के अधिकारी हैं।

गोरखपुर विश्वविद्यालय —श्रीराम गोयल

२५ मार्च १९६१

स्वर्णयुग

एक समय यह धारणा प्राय प्रचलित थी कि ईश्वर ने नर, वानर आदि जातियो की समकालिक किन्तु पृथक् पृथक् विकसित रूपोंमे सृष्टि की। मनुष्य की दैहिक और मानसिक दशा आदिकाल मे भी वैसी ही थी जैसी आज। इतिहास केवल मनुष्य के सगठन, कर्म और सस्कारो म भद करता रहा है। इस दृष्टि के अनुसार मानव-स्वभाव के अपरिवर्तित रहते हुए उसकी सामाजिक परम्पराओ का परिवर्तन ही इतिहास है। अन्य अशेष प्राणि जातियो के ऊपर मनुष्य की श्रेष्ठता और प्रभुता भी इस धारणा मे निर्विवाद है। ऐतरेयोपनिषद् मे पुरुष को लोकपाल कहा गया है। यह भी प्राय माना जाता रहा है कि मनुष्य का आदिकाल एक स्वर्णयुग था, जबकि मनुष्यों और देवताओ मे अन्तर कम था। इतिहास की गति ने मनुष्य को क्रमश कलुषित कर दिया। इस दृष्टि से मानव इतिहास को नैतिक पतन और सुख के ह्रास की कथा कहा जा सकता है। अपने देश मे प्रचलित चार युगो की धारणा इस प्रसग मे उदाहरणीय है। महाभारत मे कहा गया है कि कृतयुग मे न राज्य था न राजा, न दण्ड न दाण्डिक। धर्म से ही प्रजा मे परस्पर रक्षा होती थी। कालान्तर मे धर्म के क्षीण होने पर समाज के दण्डमूलक पुन सघटन की आवश्यकता हुई। इसी प्रकार की कल्पना अन्य अनेक जातियो मे उपलब्ध होती है। आधुनिक विचारको मे लॉक एव रूसो के द्वारा 'प्राकृत स्थिति' की कल्पना भी अशत सदृश है।

सृष्टि और इतिहास सम्बन्धी इन प्राचीन प्रचलित धारणाओ को आज अयथार्थ मानना अनिवार्य है। यद्यपि इन कल्पनाओ मे प्रकारान्तर से सत्य की छाया सर्वथा दुरालक्ष्य नही है, तथापि उस प्रकार का प्रतीकात्मक अर्थ इतिहास के क्षेत्र का अतिक्रमण करता है। वर्तमान ऐतिहासिक धारणा पिछली शताब्दी म आविष्कृत विकासवाद पर आश्रित है। जीवशास्त्रियो के अनुसार मनुष्य और पशुओ के बीच कोई अपूरणीय खाई नही है बल्कि विभिन्न जीवयोनियो मे एक निश्चित विकास का क्रम देखा जा सकता है जिसके एक ओर उथले जल के कथचित् उद्भूत प्राणी हैं और दूसरी ओर मनुष्य। एक ही प्राण की धारा नाना पशुओं और पौधो मे प्रवाहित और विकसित हुई है। काल के सुदीर्घ आयाम म जीव ने नाना शारीरिक सस्थानो के साथ विभिन्न प्राकृतिक परिस्थितियो म विभिन्न प्रयोग किये। अन्त में तृतीयक युग मे वानर परिवार के परिष्कार के द्वारा मनुष्य का उद्भव हुआ। जबडो का घटना तथा मुखाकृति म परिवर्तन अगुलियो और विशेषत अगूठे मे

दक्षता का उन्मेष जिह्वा और ओठों में नये स्वर और एकाग्रता, इन नवोदित गुणों ने मनुष्य को पिछले प्राणियों से पृथक् किया। हाथों का कौशल और वाणी का प्रयोग मनुष्य की सर्वोपरि विशेषताएं हैं जिनके द्वारा वह भौतिक संस्कृति का निर्माण तथा सामाजिक परम्परा की प्रतिष्ठा कर सका। अभाग्यवश वाणी पर आश्रित मनुष्य का विशाल मानस साम्राज्य लिपि आदि स्थिर प्रतीकों में अभिव्यक्त हुए बिना जानकारी में नहीं आता। साक्षरता ही प्रागितिहास और इतिहास के बीच विभाजक रेखा है। अतएव प्रागैतिहासिक क्षेत्र में मनुष्य का वाङमय और मनोमय जगत् अधिकांशत अज्ञात रह जाता है, यद्यपि लिपि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के कुछ प्रतीकों से उसका किंचित आभास होता है।

प्रागैतिहासिक मनुष्य का परिचय मुख्यत उसके हाथों की अवशिष्ट कृतियों से ही हो पाता है। इस प्रागैतिहासिक मानव को 'निर्माता मनुष्य' (*Homo Faber*) कहना निश्चय ही न्यायसंगत है। विभिन्न भूभागों में उपलब्ध नाना प्रकार के प्रागैतिहासिक प्रास्तरिक उपकरणों का विवरण और चित्रण आप इस पुस्तक में पायगे। उनके आकार से उनके उपयोग का कुछ अनुमान किया जा सकता है। किन्तु वस्तुत प्रागैतिहासिक समाज और संस्कृति का ज्ञान पुरातत्त्व से लेशमात्र ही हो सकता है। पुरातत्त्व को इस दिशा में नृतत्त्व विद्या की सामग्री से पूरित करना चाहिए।

नृतत्त्व-वेत्ताओं ने अविकसित भूभागों के आदिम निवासियों का सामाजिक वृत्तान्त सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ प्रस्तुत किया है। उनके विविध विवरण के आधार पर मनुष्य के प्राचीन जीवन और समाज की कल्पना नाना प्रकार से की गई है। तस्मानिया के पुराने निवासी पूर्व-पाषाणयुगीन संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते थे। अमरीका के मूल निवासी कदाचित उत्तर-पाषाण युग की संस्कृति में चिरकाल तक रहे। भारतीय आदिम जातियाँ सभ्यता से अतिदूर होने के कारण अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं हैं। वस्तुत आधुनिक समय तक अवशिष्ट आदिम समाजों में कितना अंश अविकल तथा आदिम है इसका निर्णय बहुधा दुष्कर समझना चाहिए। इतना निश्चित है कि बहुतेरी आदिम जातियों में वैज्ञानिक और तात्त्विक ज्ञान न्यूनाधिक रूप से सदृश स्तर का होने पर भी उनके सामाजिक जीवन में बहुत वैभिन्य प्रकट होता है अर्थात् एक ही पाषाण युग में विद्यमान नाना जातियाँ भाषा सगठन रीति रिवाज और धर्म की दृष्टि से अत्यन्त विभिन्न थीं। सांस्कृतिक विकास का एक परिणाम इन विभेदों को कम करना हुआ है। प्राय यह धारणा प्रचलित है कि आदिम समाज में जीवन सीधा-सादा अजटिल अग्रथित था। किन्तु यह निरपवाद सत्य नहीं प्रतीत होता। रिश्तेदारी और बिरादरी को ही

लीजिए। अनेक आदिम समाजो मे इनका बहुत जटिल व्यवस्थापन देखा जाता है। धार्मिक विचारो और कर्मकाण्ड मे भी अत्यन्त वैचित्र्य दृष्टिगोचर होता है। भौतिक और आर्थिक दृष्टि से उसके सरल और अविकसित होने हुए भी प्राचीन समाज मे एक प्रकार की रूढ़िया और जटिलताएँ निश्चय से थी। इस कारण इस प्राचीन युग का पुरातत्त्वीय चित्रण जिस प्रकार के व्यापक सादृश्य की धारणा उपस्थित करता है उसे अशत भ्रामक समझना चाहिए।

प्राचीनकाल मे धर्म के विकास पर नाना मत प्रकट किए गये हैं। धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक मानने पर उसका इतिहास भ्रान्ति का अथवा दर्शन, विज्ञान और नीति के अविभक्त पूर्व रूप का इतिहास हो जाता है। यह सही है कि प्राचीन समय मे धर्म मे नाना बौद्धिक और व्यावहारिक तत्त्व एकत्र सगृहीत थे जिनम से अनेक उत्तरकाल मे स्वतन्त्र रूप से विकसित होकर, विज्ञान, दर्शन, सामाजिक नीति, कानून आदि के रूप मे परिणत हुए हैं। किन्तु धर्म का मर्मभूत तत्त्व इन सबसे सम्बद्ध होते हुए भी विलक्षण है। धर्म अतिप्राकृतिक (Supernatural) जीवन का अनुसधान है। प्राकृतिक जीवन निश्चित सीमाओ मे बधा है। मनुष्य अमरता का प्रार्थी है और असीम, अपरतन्त्र जीवन मे ही उसे वास्तविक सुख प्राप्त हो सकता है। यह मनुष्य का स्वभावगत अनिवार्य लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति लौकिक, प्राकृतिक उपायो से सभव नही है। प्रकृति के आवरण के पीछे एक शाश्वत चेतन तत्त्व है जिसकी कृपा मनुष्य को वास्तविक लक्ष्य तक ले जा सकती है। यही कृपा विशेष अधिकारी महापुरुषो के निर्मल मनादर्पण मे धार्मिक स्फूर्ति का कारण बनती है। यही दिव्य प्रेरणा, इल्हाम श्रुति अथवा सम्बोधि का मूल उद्‌गम है। यही से धर्मचक्र का प्रवर्तन होता है।

मनुष्य जीवन एक अनिवार्य द्वैत मे ग्रस्त है। तम और प्रकाश के समान उसमे सत्य और मिथ्या के सम्मिश्रण से अनुभव का इन्द्रधनुष विस्तारित हुआ है। इसीलिए पारमार्थिक स्फूर्ति और प्ररणा भी मनुष्य के इतिहास मे कही अपने विशुद्ध रूप मे उपलब्ध नही होती। अलौकिक ज्ञान और अनुभूति की क्षीण ज्योति प्राप्त करने पर मनुष्य बहुधा उससे लौकिक भोग सम्पादित करना चाहता है एव धर्म की मान्यता होने पर दूसरो की श्रद्धा का दुरुपयोग धर्माधिकारियो को प्रलोभित करता है। धर्म प्राय मिथ्याडम्बर, अन्ध विश्वास स्वार्थ पोषण एव प्रवचन का सहायक बन उठता है। थोडी सी सच्ची लगन यदि बहुत से झूठ मे लुप्त सी हो जाय तो क्या अचरज। यही कारण है कि आधुनिक काल मे सत्य के प्रति वैज्ञानिक निष्ठा तथा मनुष्य के प्रति विश्वजनीन सहानुभूति के जागरण से अनेक विचारको ने धर्म के चिरप्रचलित अधिकाश रूप को देखकर तीव्र उद्वेग का अनुभव किया

दक्षता का उन्मेष जिह्वा और आँखों में नये स्वर और एकाग्रता, इन नवोदित गुणों ने मनुष्य को पिछले प्राणियों से पृथक् किया। हाथों का कौशल और वाणी का प्रयोग मनुष्य की सर्वोपरि विशेषताएं हैं जिनके द्वारा वह भौतिक संस्कृति का निर्माण तथा सामाजिक परम्परा की प्रतिष्ठा कर सका। अभाग्यवश वाणी पर आश्रित मनुष्य का विशाल मानस साम्राज्य लिपि आदि स्थिर प्रतीकों में अभिव्यक्त हुए बिना जानकारी में नहीं आता। साक्षरता ही प्रागैतिहास और इतिहास के बीच विभाजक रेखा है। अतएव प्रागैतिहासिक क्षेत्र में मनुष्य का वाङ्मय और मनोमय जगत् अधिकांशतः अज्ञात रह जाता है यद्यपि लिपि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के कुछ प्रतीकों से उसका किंचित् आभास होता है।

प्रागैतिहासिक मनुष्य का परिचय मुख्यतः उसके हाथों की अवशिष्ट कृतियों से ही हो पाता है। इस प्रागैतिहासिक मानव को निर्माता मनुष्य (Homo Faber) कहना निश्चय ही न्यायसंगत है। विभिन्न भूभागों में उपलब्ध नाना प्रकार के प्रागैतिहासिक प्रास्तरिक उपकरणों का विवरण और चित्रण आप इस पुस्तक में पायेंगे। उनके आकार से उनके उपयोग का कुछ अनुमान किया जा सकता है। किन्तु वस्तुतः प्रागैतिहासिक समाज और संस्कृति का ज्ञान पुरातत्त्व से लेशमात्र ही हो सकता है। पुरातत्त्व को इस दिशा में नृतत्त्व विद्या की सामग्री से पूरित करना चाहिए।

नृतत्त्व-वेत्ताओं ने अविकसित भूभागों के आदिम निवासियों का सामाजिक वृत्तान्त सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ प्रस्तुत किया है। उनके विविध विवरण के आधार पर मनुष्य के प्राचीन जीवन और समाज की कल्पना नाना प्रकार से की गई है। तस्मानिया के पुराने निवासी पूर्व-पाषाणयुगीन संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते थे। अमरीका के मूल निवासी कदाचित् उत्तर-पाषाण युग की संस्कृति में चिरकाल तक रहे। भारतीय आदिम जातियाँ सभ्यता से अतिदूर होने के कारण अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं हैं। वस्तुतः आधुनिक समय तक अवशिष्ट आदिम समाजों में कितना अंश अविकल तथा आदिम है इसका निर्णय बहुधा दुष्कर समझना चाहिए। इतना निश्चित है कि बहुतेरी आदिम जातियों में वैज्ञानिक और ताक्षणिक ज्ञान न्यूनाधिक रूप से सदृश स्तर का होने पर भी उनके सामाजिक जीवन में बहुत वैशिष्ट्य प्रकट होता है, अर्थात् एक ही पाषाण युग में विद्यमान नाना जातियाँ भाषा संगठन, रीति रिवाज और धर्म की दृष्टि से अत्यन्त विभिन्न थीं। सांस्कृतिक विचारों का एक परिणाम इन विभेदों को कम करना हुआ है। प्रायः यह धारणा प्रचलित है कि आदिम समाज में जीवन सीधा-सादा अजटिल, अग्रन्थिल था। किन्तु यह निरपवाद सत्य नहीं प्रतीत होता। रिश्तेदारी और बिरादरी को ही

लीजिए। अनेक आदिम समाजो मे इनका बहुत जटिल व्यवस्थापन देखा जाता है। धार्मिक विचारो और कर्मकाण्ड मे भी अत्यन्त वैचित्र्य दृष्टिगोचर होता है। भौतिक और आर्थिक दृष्टि से उसके सरल और अविकसित होने हुए भी प्राचीन समाज मे एक प्रकार की रूढ़ियाँ और जटिलताएँ निश्चय से थी। इस कारण इस प्राचीन युग का पुरातत्त्वीय चित्रण जिस प्रकार के व्यापक सादृश्य की धारणा उपस्थित करता है उसे अज्ञात भ्रामक समझना चाहिए।

प्राचीनकाल मे धर्म के विकास पर नाना मत प्रकट किए गये हैं। धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक मानने पर उसका इतिहास भ्रान्ति का, अथवा दर्शन, विज्ञान और नीति के अविभक्त पूर्व रूप का इतिहास हो जाता है। यह सही है कि प्राचीन समय मे धर्म मे नाना बौद्धिक और व्यावहारिक तत्त्व एकत्र संगृहीत थे जिनमे से अनेक उत्तरकाल मे स्वतन्त्र रूप से विकसित होकर, विज्ञान, दर्शन, सामाजिक नीति कानून आदि के रूप मे परिणत हुए हैं। किन्तु धर्म का मर्मभूत तत्त्व इन सबमे सम्बद्ध होते हुए भी विलक्षण है। धर्म अतिप्राकृतिक (Supernatural) जीवन का अनुसधान है। प्राकृतिक जीवन निश्चित सीमाओं मे बंधा है। मनुष्य अमरता का प्रार्थी है और असीम, अपरतन्त्र जीवन म ही उसे वास्तविक सुख प्राप्त हो सकता है। यह मनुष्य का स्वभावगत अनिवार्य लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति लौकिक, प्राकृतिक उपायो से सभव नही है। प्रकृति के आवरण के पीछे एक शाश्वत चेतन तत्त्व है जिसकी कृपा मनुष्य को वास्तविक लक्ष्य तक ले जा सकती है। यही कृपा विशेष अधिकारी महापुरुषो के निर्मल मनोदर्पण मे धार्मिक स्फूर्ति का कारण बनती है। यही दिव्य प्रेरणा, इल्हाम श्रुति अथवा सम्बोधि का मूल उद्‌गम है। यही से धर्मचक्र का प्रवर्तन होता है।

मनुष्य जीवन एक अनिवार्य द्वैत म ग्रस्त है। तम और प्रकाश के समान उसमे सत्य और मिथ्या के सम्मिश्रण से अनुभव का इन्द्रधनुष विस्तारित हुआ है। इसी लिए पारमार्थिक स्फूर्ति और प्ररणा भी मनुष्य के इतिहास मे कहीं अपने विशुद्ध रूप मे उपलब्ध नही होती। अलौकिक ज्ञान और अनुभूति की क्षीण ज्योति प्राप्त करने पर मनुष्य बहुधा उससे लौकिक भोग सम्पादित करना चाहता है एव धर्म की मान्यता होने पर दूसरो की श्रद्धा का दुरुपयोग धर्माधिकारियो को प्रलोभित करता है। धर्म प्राय मिथ्याडम्बर अन्ध विश्वास स्वार्थ पोषण एव प्रवचन का सहायक बन उठता है। थोडी भी सच्ची लगन यदि बहुत से झूठ मे लुप्त सी हो जाय तो क्या अचरज। यही कारण है कि आधुनिक काल मे सत्य के प्रति वैज्ञानिक निष्ठा तथा मनुष्य के प्रति विश्वजनीन सहानुभूति के जागरण से अनेक विचारको ने धर्म के चिरप्रचलित अधिकाश रूप को देखकर तीव्र उद्वेग का अनुभव किया

तथा उसके इतिहास को एक प्राकृतिक तथा स्वार्थ प्रधान संस्था का इतिहास माना। वस्तुत मनुष्य के स्वगत दोषों से अपविद्ध होते हुए भी धर्म का सूत्र मूलत तत्त्व संलग्न है। वही एक सुनहरी डोरी है जो अन्तत मनुष्य को अपने लक्ष्य तक ले जा सकती है। फादर श्मिट ने विस्तृत अन्वेषण के बाद यह प्रदर्शित किया कि प्राचीनतम काल मे सभी मनुष्य सीधा-साधा पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए एक ईश्वर मे विश्वास करते थे। पीछे आर्थिक जटिलताओं के आविर्भाव के कारण तथा विशेषत उन्नत आखेट के युग मे सम्पत्तिगत वैषम्य एव कबीलो के और उनके नेताओं के उदय के साथ नाना और नाना स्तरीय देवताओं की कल्पना का विकास प्रोत्साहित हुआ। अल्तमिरा की गुफा म चित्रित बाइसन (Bison) इस युग का मूर्त प्रतीक है। कभी उसके जीवन्त आनेग्य के सहारे कोई पुरोहित समस्त बाइसन (Bison) जाति के वशीकरण का प्रयास करते रहे होंगे। तब से अधिकाश मनुष्य जाति किसी न किसी रूप मे ऐसे ही पुरोहितो का अनुसरण करती रही है जो अपनी ज्ञानशक्ति अथवा विज्ञान शक्ति के सहारे बाह्य प्रकृति की विजय मे, अधिकाधिक सफलता प्राप्त करते हैं। पर वास्तव मे मनुष्य को अपनी आन्तरिक प्रकृति को जीतना है। वही शाश्वत शान्ति का मार्ग है और वही धर्म का मार्ग।

प्रागितिहास इतिहास की कतिपय सहस्राब्दियों का एक सही परिप्रेक्ष्य में रख देता है। मनुष्य की सभ्यताओं के मूल मे उसकी शतधा भिन्न प्रकृति है जो केवल आर्थिक एव वैज्ञानिक विकास से आदर्श नही बन जाती। प्रागैतिहासिक सस्कृतियो म अनेकविध जीवनचर्याए और उनके उपयुक्त सगठन निर्मित हुए थे। उन सब म ऐहिक सुख की मात्रा सभ्य समाजो की तुलना मे हेय थी, यह कह सकना पर्याप्त साहस की अपेक्षा रखता है। सभ्यता का मूल तत्त्व प्रगतिशीलता कहा गया है किन्तु प्रगति का निर्धारण लक्ष्य-सापेक्ष है। ऐहिक सुख को लक्ष्य मानने पर अनिवार्य कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। प्राणि विकास म सुख का स्थान आनुषगिक रहा है न कि मुख्य। मनुष्य मुख्यत सुखापेक्षी प्राणी न होकर आत्मान्वेषी है। स्वभाव कहा है यही जिज्ञासा मनुष्य के लिए प्रगति की मुख्य प्रेरणा है। इसकी पूर्ति के लिए प्रागैतिहासिक समाज म अधिक स्थान था या ऐतिहासिक समाज म, यह मीमांस्य है।

कदाचित् रूसो का भी यह मन्तव्य नही था कि सभ्य समाज को फिर से आदिम अवस्था मे लौट जाना चाहिए। न यह सम्भव है न वास्तविक प्रागैतिहासिक समाज किसी प्रकार आदर्श ही माना जा सकता है। इतना अवश्य है कि प्रारम्भिक समाज पुरुष प्रधान था, धन प्रधान अथवा सम्पदा नहीं। किन्तु शीघ्र ही प्रागैतिहासिक काल मे भी पशु पालकता एव सम्पत्ति वैषम्य [illegible]

प्रकट हो गये थे। सभ्यता अतीतापेक्षी न होकर अनागतप्रेक्षी है। इस अनागत में यदि ऐसी प्रकृष्टतर 'अराजकता' आविर्भूत हो जिसमें दण्डनिरपेक्ष धर्म ही शासक रहे, तो प्रागितिहास में दृष्ट लुप्त गुण का पुनराधान हो जायेगा।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में एक अभाव की समुचित पूर्ति करती है। मुझे विश्वास है कि प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व तथा *नृतत्त्वशास्त्र के विद्यार्थियों तथा सामान्य जिज्ञासुओं के लिए यह अतीव उपयोगी सिद्ध होगी।*

—गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

अध्यक्ष,
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय।

"I want to know what were the steps by which men passed from barbarism to civilization."

—VOLTAIRE

यूरोप और एशिया का
अवस पचास सहस्त्र वर्ष पूर्व
का सम्भावित भौगोलिक
स्वरूप
हिम
जल
भूमि
आधुनिक सीमायें
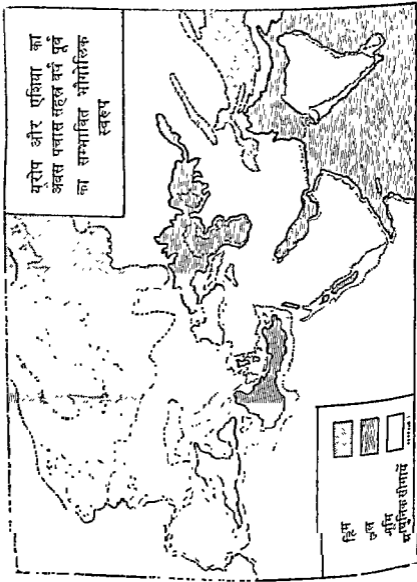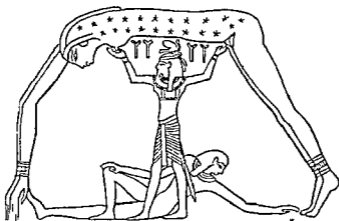
१

पृथिवी का जन्म और जीवन का विकास

"In the beginning God created the heaven and the earth And the earth was without form and void, and darkness was upon the face of the deep And the Spirit of God moved upon the face of the waters"

—Genesis

मानव-सभ्यता के जन्म और विकास का नाटक अब से कई लाख वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ। तब से लेकर अब तक इसके कुल कितने अंक खेले जा चुके हैं और उनमें कुल कितने पात्रों ने अभिनय किया है इसकी गणना करना सहज नहीं है। इस कठिनाई का प्रधान कारण है इस नाटक का विचित्र स्वरूप। साधारण नाटकों में पात्रों से पहले रिहर्सल कराया जाता है और प्रत्येक पात्र को बता दिया जाता है कि उसकी भूमिका कैसी और कितनी लम्बी है। लेकिन इस नाटक का न तो कभी रिहर्सल होता है और न इसके पात्र अपनी भूमिका से परिचित होते

इस पृष्ठ के ऊपर दिया गया चित्र प्रागैतिहासिक मिस्र निवासियों की सृष्टि-विषयक कल्पना का उन्हीं के द्वारा अङ्कन है। इसमें सबसे नीचे पृथिवीदेव केब लेटा हुआ है। उसके पास वायुदेव शु खड़ा है। वह गगन को, जिसका अङ्कन एक देवी के रूप में हुआ है, सहारा दे रहा है। द्रष्टव्य है कि गगनदेवी का शरीर तारों से भरा हुआ है और वह झुककर पृथिवीदेव के ऊपर एक गुम्बद सा बनाये हुए है।

हैं। सबसे विचित्र बात यह है कि इस नाटक के बहुत से दृश्य एक साथ चलते हैं लेकिन कोई दृश्य शीघ्र समाप्त हो जाता है और कोई बहुत दीर्घ समय तक चलता है। उदाहरण के लिए इसका पहला दृश्य जिसका हम अध्ययन करना है कई लाख वर्ष तक चलता है लेकिन बीच के कुछ दृश्य कुछ दशकों पश्चात समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस नाटक का अन्त कब और कहाँ होगा इसका ज्ञान भी किसी को नहीं है। जितना नाटक खेला जा चुका है उसका ज्ञान प्राप्त करना भी बड़ा कठिन है क्योंकि खेले जा चुके अंश के बहुत से पृष्ठ विलुप्त होगये हैं और जो पुराने पात्र अब तक रंगमंच पर अवस्थित हैं वे अपनी पुरानी भूमिका भूल चुके हैं। इसके प्राचीनतम अंश का अध्ययन करना जो हमारा उद्देश्य है विशेष रूप से कठिन है क्योंकि उस युग में लिपि का अस्तित्व न होने के कारण हम पूर्णतः पुरातात्विक साक्ष्यों पर अवलम्बित रहना पड़ता है और पुरातात्विक साक्ष्य विश्वसनीय होने पर भी मानव जीवन के कुछ अङ्गों पर ही प्रकाश डालने में समर्थ होते हैं।

हमारी पृथिवी

सृष्टि में पृथिवी का स्थान—आजकल लगभग सभी व्यक्ति यह जानते हैं कि हमारी पृथिवी नारंगी के आकार की तरह गोल है और सूर्य के चारों ओर चक्कर काटती रहती है। इसका व्यास लगभग ८ ००० मील और परिधि २५ ००० मील है। यह तथ्य हम आधुनिक काल में वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा जान पाये हैं। लेकिन आदिम मनुष्य के लिए अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह मानना सर्वथा सहज और स्वाभाविक था कि पृथिवी गोल न होकर चपटी है और सूर्य तथा चाँद इसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। बेबिलोन मिस्र और अन्य प्राचीन देशों में शताब्दियों तक खगोल विद्या सम्बन्धी खोज होने के बावजूद इससे मिलते जुलते विचार मान्य रहे। भारत में आर्यभट (जन्म ४७६ ई०) ने सूर्य के स्थिर होने और पृथिवी के उसके चारों ओर घूमने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा पृथिवी की परिधि २४ ८३५ मील बताई। परन्तु दुर्भाग्यवश उनके मत को स्वयं भारत के परवर्ती विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया। यूरोप में आधुनिक काल में सर्वप्रथम कोपरनिकस् (१४७३-१५४३ ई०) ने सूर्य के चारों ओर पृथिवी के घूमने के सिद्धान्त की मान्यता दी। तब से यान्त्रिक उपकरणों की सहायता से पृथिवी और सृष्टि के आकार और स्वरूप के विषय में हमारे ज्ञान में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। अब हम जानते हैं कि हमारी पृथिवी एक ग्रह है और सौरमण्डल की सदस्या है। सूर्य से हमारी दूरी नौ करोड़ मील से अधिक नौ करोड़ मील तक रहता है। सौर-परिवार के सब ग्रहों में सब से अधिक दूरी वाला ग्रह प्लूटो ... मील दूर पड़ता है। हमारा सौरमण्डल आकाशगंगा के अनगिनत सौरमण्डलों

म से एक है और स्वयं आकाशगंगा सृष्टि की अगणित आकाशगंगाओं में से एक है। इस सृष्टि में ऐसे बहुत से नक्षत्र हैं जिनका प्रकाश जो एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील की गति से चलता है, हमारी पृथिवी तक अरबों वर्षों में भी नहीं पहुँच पाता। ऐसी सृष्टि में, जिसकी विशालता की कल्पना करना भी असम्भव है, हमारी पृथिवी महासमुद्र में एक बूँद के बराबर है।

पृथिवी का जन्म—पृथिवी की आयु के विषय में प्राचीन मनुष्य की धारणायें बहुत भ्रमपूर्ण थीं। इस क्षेत्र में भी सम्भवतः भारतीय विचारकों के अतिरिक्त किसी अन्य देश के विद्वान् सत्य के निकट नहीं पहुँच पाये। यूरोप में तो अट्ठारहवीं शताब्दी ई० तक यह विश्वास प्राप्त होता है कि सृष्टि की रचना ईश्वर ने ४००४ ई० पू० में, अब से लगभग छः सहस्र वर्ष पूर्व की थी। पहले उसने पृथिवी और आकाश बनाए और फिर वनस्पति जीव जन्तु और मनुष्य। इस कार्य में उसे कुल छः दिन लगे। यह भ्रामक विचार यहूदियों की बाइबिल पर आधारित था। मुसलमानों की धर्म-पुस्तक कुरान में भी इसी मत का प्रतिपादन किया गया है। इसी से मिलता जुलता विवरण पारसियों के धर्मग्रन्थ 'अवेस्ता' में मिलता है। लेकिन आधुनिक काल में खगोल विद्या और भूगर्भ विद्या, विशेषतः लुप्त-जन्तुशास्त्र और लुप्त-वनस्पतिशास्त्र की सहायता से यह सिद्ध कर दिया गया है कि पृथिवी तथा अन्य ग्रह मूलतः सूर्य के अंश थे। लगभग साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व जब पृथिवी तथा अन्य ग्रहों का अस्तित्व न था, सूर्य का आकार अब से विशालतर था। उस विशालतर सूर्य में एक दिन सहसा भीषण विस्फोट हुआ। इसका कारण था किसी अन्य विशाल नक्षत्र का अचानक सूर्य के अत्यन्त निकट आ जाना। उसके आकर्षण से सूर्य में गैस की विशाल तरंग उठी। उनमें से एक तरंग प्रचण्ड आकर्षण के वेग के कारण सूर्य से पृथक् हो गई और बूँदों के रूप में बिखर गयी। इन विशृंखलित बूँदों से पृथिवी शुक्र बुध, मंगल शनि तथा बृहस्पति इत्यादि ग्रह बने जो सूर्य के आकर्षण के कारण उसके चारों ओर चक्कर लगाने लगे। इस प्रकार हमारी पृथिवी अब से साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व में आई।

जीवन का विकास

जीवन का उद्भव—पृथिवी पर जीवन का उद्भव कैसे और कब हुआ यह कहना कठिन है। प्राचीनकाल में यह विश्वास किया जाता था कि परमात्मा ने सब प्रकार की वनस्पतियाँ और जीव एक बार ही उत्पन्न कर दिये थे और फिर वंशानुवंश उनकी परम्परा चलती रही। परन्तु आधुनिक काल में अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि पृथिवी पर रासायनिक तथा भौतिक प्रक्रियाओं के फल-

स्वरूप भौतिक तत्त्व से जीवतत्त्व स्वयं ही अस्तित्व में आ गया था। जीव के प्रत्येक रूप का आधार 'प्रोटोप्लाज्म' नाम का एक तत्त्व है जो अत्यन्त जटिल दैहिक-रासायनिक संगठन है। इस तत्त्व की संरचना का विश्लेषण अभी तक नहीं हो पाया है, इसलिए जीवन का उद्भव अभी तक एक रहस्य बना हुआ है। सम्भवतः जीवन का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव छिछले जल में धूप से प्रकाशित स्थलों पर एक स्वयं पूर्ण जीवकोष (Cell) वाले प्राणी—प्रोटोजोआ—के रूप में हुआ। यह प्राणी बहुत ही सूक्ष्म—अस्थि, खाल और खोल रहित—लसलसी झिल्ली के समान रहा होगा। कालान्तर में बाह्य परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर उसकी शरीर-संरचना भी सरल से जटिल होती चली गई जिससे एक जीवकोषी से बहुजीव-कोषी प्राणी—मेटाजोआ—अस्तित्व में आये। जीवों के विकास के इस सिद्धान्त को प्राणीशास्त्र में 'विकासवाद' कहते हैं। इसके प्रतिपादकों में फ्रांस के लेमार्क और इंगलैण्ड के डार्विन (१८०९-१८८२ ई०) तथा एल्फ्रेड वालेस (१८२३-१९१३ ई०) नामक विद्वान् उल्लेखनीय हैं।

विकासवाद—विकासवाद के अनुसार प्रत्येक प्राणी की सन्तान अपने माता-पिता के अनुरूप होती है, किन्तु यह अनुवंशीयता होने के बावजूद वह कुछ बातों में माता पिता से भिन्न भी होती है। उसके शारीरिक अवयव और स्वभाव उसके माता-पिता से पूर्णतः नहीं मिलते। दूसरी ओर प्रत्येक प्राणी को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपने को प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ता है। डार्विन के अनुसार प्रत्येक नस्ल के प्राणियों में नवागन्तुकों की संख्या उससे कहीं अधिक होती है जितनी की उदरपूर्ति प्रकृति कर सकती है। इसके परिणाम स्वरूप प्राणियों में आत्मरक्षा के लिए संघर्ष होता है। इसे विकासवाद में 'जीवन-संघर्ष नियम' (Struggle for Existence) कहते हैं। इस संघर्ष के कारण शरीर के जो अवयव नई प्राकृतिक परिस्थितियों में सहायक होते हैं, वे विकसित होने लगते हैं और जो अवयव व्यर्थ होते हैं वे लुप्त होने लगते हैं। ऐसे किसी निरन्तर परिवर्तन के कारण ही प्राणियों का जाति परिवर्तन हो जाता है। दूसरे शब्दों में प्रकृति में वही प्राणी जीवित रहते हैं जो स्वयं को प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल बना लेते हैं और शेष नष्ट हो जाते हैं। इस नियम को 'प्राकृतिक निर्वाचन' (Natural Selection) या 'योग्यतम का अनु-जीवन' (Survival of the Fittest) कहते हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसे कीड़े को लीजिए जो सूखी काली जगह में रहता है। उसकी सन्तानों में अधिकांश कीड़े काले या लाल और दो चार हरे हैं। अब अगर परिस्थितियाँ बदल जाएँ और वह स्थान हरा भरा हो जाए तो हरे रंग के कीड़ों को अन्य रंगों के कीड़ों से अधिक सुविधा होगी, क्योंकि वे हरे पत्तों में छिपकर शत्रुओं से अपनी

रक्षा कर सके। इसका परिणाम यह होगा कि कुछ ही समय में हरे रंग के कीड़ों की संख्या बढ़ जायगी और अन्य रंग के कीड़ों की संख्या घट जायेगी। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि यह अनिवार्य नहीं है कि विकास अविच्छिन्न प्रवाह की भाँति चले और उसकी प्रत्येक कड़ी दूसरी कड़ी से जुड़ी हुई मिले। ऐसी स्थितियाँ भी सम्भव हैं जिनमें जीव एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक छलांग मारकर पहुँच जाता है। दूसरे यह भी अनिवार्य नहीं है कि किसी जाति का उच्चतर रूप आने पर निम्नतर रूप सर्वथा विलुप्त हो जाय। बहुधा निम्नतर प्राणियों की स्थिति भी बनी रहती है, अन्तर केवल यह होता है कि उनकी गति विधि का क्षेत्र सीमित हो जाता है।

डार्विन ने विकासवाद की परिकल्पना को केवल पशुओं पर ही नहीं मनुष्यों पर भी लागू किया। उसके पश्चात् इस सिद्धान्त में बहुत से विद्वानों ने संशोधन प्रस्तुत किये। उदाहरणार्थ डार्विन के इस विचार का कि प्राणी को अपने माता-पिता द्वारा विकसित किये गये अवयव मिल जाते हैं जर्मन विद्वान् ऑगस्ट वीज़मान (August Weismann) ने विरोध किया। उसने बताया कि प्राणियों के दो प्रकार के कोष होते हैं—दैहिक (Somatic) तथा आनुवंशिक (Genetic)। दैहिक कोषों में होने वाले परिवर्तनों का आनुवंशिक कोषों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए किसी प्राणी के शरीर में उसके माता पिता के वही गुण आ सकते हैं जो उनके जनन द्रव्य (Germplasm) में रहे हों। इसी प्रकार १९०१ ई० में डच विद्वान् ह्यूगो दे व्रीज (Hugo De Vries) ने आस्ट्रियन पादरी ग्रीगोर मेण्डल (१८२२-८४ ई०) के 'अनुवंशीयता सिद्धान्त' के आधार पर नवोत्पत्ति के कारणों के विषय में अपनी परिकल्पना (Mutation Hypothesis) प्रकाशित की। व्रीज का विचार है कि प्राणियों में विकास का कारण धीरे धीरे होने वाले परिवर्तन नहीं वरन् अकस्मात् होने वाले तात्त्विक परिवर्तन (Mutations) होते हैं जिनसे थोड़े समय में ही प्राणियों की जाति में परिवर्तन हो सकता है। व्रीज के सिद्धान्त में हाल ही में Goldschmidt (१९४०) तथा सिम्पसन (१९४४) इत्यादि विद्वानों ने संशोधन किये हैं।

जीवों का इतिहास

स्तरीय चट्टानें—जीवों का प्रादुर्भाव कब हुआ यह ठीक-ठीक कहना असम्भव है। इतना निश्चित है कि पृथिवी के अस्तित्व में आने के कम-से-कम दो अरब वर्ष बाद तक इस पर जीवों की स्थिति सम्भव नहीं थी। अपने जन्म के समय पृथिवी गैसीय अग्नि का एक भयंकर गोला थी। लेकिन धीरे धीरे यह ठण्डी हुई और इसका ऊपरी स्तर पहले तरल और फिर ठोस अवस्था में आया और अन्त

मे चट्टानो के रूप मे परिवर्तित होगया। उस समय तक जल पृथिवी पर केवल वाष्प रूप मे रहा होगा लेकिन कालान्तर मे यह भी ठण्डा होकर बरसने लगा। इस जल से पृथिवी के गड्ढे झीलों, समुद्रों और महासमुद्रों मे परिवर्तित हो गये। वर्षा और हवा का एक प्रभाव और भी पडा। इनके सतत 'आक्रमणों' के कारण चट्टानो का बहुत सा अश टूटकर मिट्टी के रूप मे पृथिवी पर फैल गया। इन प्रक्रियाओं मे लगभग दो अरब वर्ष लगे लेकिन अन्त मे, अब से लगभग ढाई अरब वर्ष पूर्व, पृथिवी की अवस्था ऐसी हो गई कि यहाँ जीवित प्राणी रह सकें। इस दीर्घ काल को जो सूर्य से पृथिवी के ठण्डी होकर ग्रह के रूप मे परिवर्तित होने और समुद्रों का निर्माण होने तक व्यतीत हुआ भूगर्भवेत्ता 'सृष्टि-समय' (Cosmic Time) कहते हैं। इस काल का अध्ययन करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन इसके बाद के युग का, जिसे 'भूगर्भशास्त्रीय समय' (Geologic Time) कहा जाता है, अध्ययन स्तरीय-चट्टानो की सहायता से किया जा सकता है (तालिका १)।

स्तरीय चट्टाने (Sedimentary Rocks) भूगर्भीय इतिहास के वे पृष्ठ है जिनकी सहायता से हम जीवन के विकास का अध्ययन करते है। ये सरिता, वायु तथा हिमनदी (Glacier) जैसे सवाहन के साधनो के द्वारा लाये हुए चूर्णों के पर्तों से बनती हैं। ऋतु अपक्षय (Weathering) तथा आवरण-क्षय (Erosion) द्वारा पूर्ववर्ती चट्टानो के क्षय होने पर चूर्ण (Sediments) बनते हैं। ये चूर्ण उपर्युक्त साधनो द्वारा लाये जाकर एक स्थान पर एकत्र होते रहते हैं। धीरे-धीरे चूर्ण के ढीले कणो के बीच सिलिका (Silica), मृत्तिका (Clay), कार्बोनेट, लोहा तथा नमक जैसे पदार्थ पानी से छन छनकर जमा हो जाते है। इस तरह वेल्डिंग (Welding) और सीमेन्टेशन (Cementation) होने पर ये चूर्ण की पर्तें ठोस चट्टानो का रूप धारण कर लेती हैं। इनकी सबसे बडी विशेषता यह होती है कि ये पर्तों अथवा तहों के रूप में निर्मित होती हैं। जब स्थिर जल में ढीले या बिखरे पदार्थ बहाकर लाये जाते है तो सबसे पहले बडे कणो और उनके बाद बारीक कणों की तहें जमती हैं। इस प्रकार बडे कणों वाली पर्तें नीचे और छोटे कणो वाली पर्तें ऊपर रहती है। इस प्रक्रिया के बराबर चलते रहने पर तह के ऊपर तह जमती चली जाती हैं। इन्हीं चट्टानो को स्तरीय चट्टानें कहते हैं। इन चट्टानो की तहो—स्तरो—में उस काल के प्राणियो और वनस्पतियो के अनेक अवशेष जैसे अस्थियाँ, पत्ते, टहनियाँ, वर्षा की बूदो के चिह्न तथा पद चिह्न तथा आवरण इत्यादि दब जाते है जिस काल में उन स्तरो का निर्माण होता है। ऐसे प्राचीन चिह्न और वस्तुएँ बहुधा पथराई—प्रस्तरित—अवस्था में मिलती है। अंग्रेजी में इन्हें फॉसिल (Fossil) कहा जाता है। इन अवशेषों अथवा चट्टानों का

अध्ययन करके और वैज्ञानिक विधियों द्वारा इनका काल निर्णय करके जीवन के विकास और प्रारम्भिक मानव-सभ्यता के इतिहास का पुनर्निर्माण किया जाता है।[1]

स्तरीय चट्टान कई प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ बालू में बनी चट्टान बलुहा-पत्थर (Sandstone) की चट्टान कहलाती हैं। विभिन्न आकार के कंकड़-पत्थरों (Pebbles) से युक्त पथरीली मिट्टी अथवा बजरी (Gravel) के बीच में चिकनी मिट्टी आने से जो चट्टानें बनती हैं उन्हें कॉंग्लोमेरेट (Conglomerate) कहते हैं। कॉंग्लोमरेट के टुकड़े अधिकतर गोल अथवा अण्डाकार होते हैं जिससे प्रकट होता है कि ये नदी द्वारा दूर तक बहाकर लाये गए हैं।

वैज्ञानिकों ने स्तरीय चट्टानों में प्राप्त अवशेषों का अध्ययन करके जीवन के विकास के इतिहास को पाँच अध्यायों में विभाजित किया है (तालिका १)।

---

१ चट्टानों और प्रागैतिहासिक अवशेषों के काल निर्णय के लिए विशेषतः चार प्रकार की विधियाँ अपनाई जाती हैं—

(१) पहली विधि है चट्टानों की मोटाई की जाँच करना और प्रतिवर्ष जितनी मिट्टी जमती है उसके हिसाब से चट्टान की आयु को निर्धारित करना। लेकिन इसमें बहुत सी गलतियाँ हो सकती हैं क्योंकि सभी स्थानों पर एक वर्ष में समान मोटाई की तहें नहीं जमती। दूसरे भूकम्प आदि प्राकृतिक दुर्घटनाओं से चट्टानों की तह ऊपर-नीचे भी हो जाती है।

(२) बहुत से विद्वानों ने हिमयुगों की अवधि की गणना करके तत्कालीन स्तरीय चट्टानों की तिथि मालूम करने की चेष्टा की हैं। हिमयुगों के आने का कारण सौर्यिक विकिरण (Solar Radiation) में अन्तर पड़ जाना और सौर्यिक विकिरण में अन्तर पड़ने का कारण सम्भवतः ग्रहों की पारस्परिक आकर्षण शक्ति में व्यवधान पड़ जाने से पृथिवी की कक्षा (Orbit) में उलटफेर हो जाना था। इसलिये आस्ट्रोनोमिकल विधि से पृथिवी की कक्षा में होने वाले उलट-फेरों (Perturbations) का अध्ययन करके हिमयुगों की और हिमयुगों के द्वारा तत्कालीन समय में बनी चट्टानों और उनमें प्राप्त होने वाले अवशेषों की तिथि निश्चित की जा सकती है।

(३) तीसरी विधि 'फ्लोरीन परीक्षण' कहलाती है। प्रत्येक जीव की हड्डी ज्यों-ज्यों पथराकर फासिल बनती जाती है त्यों-त्यों वह 'फ्लोरीन' नामक गैस अपने अन्दर जज्ब करती जाती है। जितनी अधिक पुरानी हड्डी होगी उसमें फ्लोरीन की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

(४) चौथी विधि कार्बन परीक्षण कहलाती है। प्रत्येक प्राणी में जीवितावस्था में कार्बन १४ नामक पदार्थ होता है। मृत्यु के उपरान्त कार्बन १४ धीरे-धीरे ध्वस्त होने लगता है परन्तु इसके विध्वंस की गति बहुत धीमी होती है। लगभग ५७०० वर्ष में इसकी आधी मात्रा और ११४०० वर्ष में एक चौथाई मात्रा शेष रहती है। इसलिये प्राचीन प्रस्तरित अवशेषों में कार्बन १४ की मात्रा जानकर उनकी आयु निर्धारित की जा सकती है। इस विधि से ५०,००० वर्ष पुराने अवशेषों तक की आयु निश्चित करने में सफलता प्राप्त हुई है।

(१) अजीव-युग (Azoic Age)—स्तरीय-चट्टानों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इनके प्राचीनतम स्तर २७० करोड वर्ष पुराने हैं। इनमे अब से १६० करोड वर्ष पुराने स्तरो तक मे जीवित प्राणियों के अवशेष प्राप्त नही होते। अत इन चट्टानों के युग को अजीव युग कहा जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि अजीव युग मे बहुत ही सूक्ष्म प्राणी, जिनका अस्तित्व सिद्ध करना असम्भव है, अस्तित्व मे आ चुके थे। इसलिए वे इस युग को प्रजीव युग (Archaeozoic Age) कहते है।

(२) प्रारम्भिक-जीवयुग (Proterozoic Age)—इस युग मे पृथिवी पर जीवन का निश्चित रूप से प्रादुर्भाव हुआ। यह युग १२० करोड वर्ष पूर्व से ५५ करोड वर्ष पूर्व तक चला। इस युग के प्राणी बहुत सूक्ष्म लमलसी झिल्ली—जेली-फिश—के रूप मे थे। इनके न हड्डी होती थी न खाल और न खोल। इनके अवशेष स्तरीय-चट्टानों से प्राप्त नही होते लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इनके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है। आज भी ससार मे ऐसे बहुत से सूक्ष्म प्राणी हैं जिनके अस्तित्व का कोई भी प्रत्यक्ष प्रमाण भावी भूगर्भवेत्ताओं को नही मिलेगा। इन प्रारम्भिक प्राणियो का प्रादुर्भाव सम्भवत छिछले जल मे हुआ। इसी प्रकार वनस्पति जगत् का प्रारम्भ भी इस युग मे काई की तरह के पौधो के रूप मे हुआ। क्योकि ये प्रारम्भिक जलचर प्राणी और पौधे आधुनिक प्राणियो और वनस्पति जगत् के पूर्वज थे, इसलिए आज भी समस्त जीव और वनस्पति किसी-न-किसी रूप मे, कम या अधिक, जल पर निर्भर रहते हैं।

(३) प्राचीन-जीवयुग (Palaeozoic Age)—यह युग अब से लगभग ५५ करोड वर्ष पूर्व से २० करोड वर्ष पूर्व तक चला। इसे प्राथमिक-युग (Primary Period) भी कहते है। इस युग के प्रारम्भ मे ऐसे प्राणी अस्तित्व मे आने लगते हैं जिनके शरीर पर सूर्य की प्रखर किरणों से बचाव के लिए एक खोल चढा होता था। ऐसे खोल-युक्त प्राणियो मे छोटी छोटी मछलियाँ, रेंगने वाले कीडे, जल-बिच्छू और केकडे इत्यादि उल्लेखनीय हैं। जल-बिच्छू, जो ९ फीट तक लम्बा होता था प्राचीन-जीवयुग के प्रारम्भ मे पृथिवी का सर्वोच्च प्राणी था। लेकिन कुछ समय बाद परिस्थिति बदल जाती है और पृथिवी पर मछलियो की सख्या बढ जाती है (चित्र २)। इनके आँख और दाँत इत्यादि अवयव भलीभाँति विकसित हो चुके थे और रीढ की हड्डी बन चुकी थी। इन मछलियो को ससार का रीढ की हड्डी वाला—पृष्ठवंशीय (Vertebrate)—प्राचीनतम प्राणी कहा जा सकता है। ये मछलियाँ साधारणत २ फुट और कभी-कभी २० फुट तक लम्बी होती थीं। इनकी सख्या इतनी अधिक थी कि प्राचीन-जीवयुग के इस भाग

का 'मत्स्य कल्प' (Age of Fishes) कहा जाता है। मत्स्यकल्प में जीवन जल तक सीमित था। भूमि अभी तक अजीव युग में रह रही थी। मत्स्यकल्प के अन्त में पृथिवी की जलवायु में भारी परिवर्तन हुए जिससे भूमि भी प्राणियों के रहने योग्य हो गई। सर्वप्रथम वनस्पति जगत जल से निकल कर दलदल भूमि की ओर फैला। उसके साथ अनेक प्रकार के कीड़े जैसे जल बिच्छू कनखजूरे केंचुए और
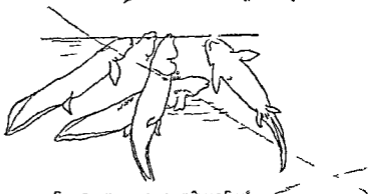
चित्र २ हवा में साँस लेती मछलियाँ

मेंढक, रेंगने वाले जीव अथवा सरीसृप (Reptiles) और विशालकाय मक्खी (Dragon fly) इत्यादि भी दलदलों में आकर रहने लगे। स्मरणीय है कि भूमि की ओर बढ़ने वाले ये प्राणी अभी तक अर्द्ध-जलचर अर्द्ध-थलचर अर्थात् उभयचर (Amphibia) थे। उन्होंने हवा में साँस लेना सीख लिया था लेकिन मूलत जलचर होने के कारण उनमें अभी तक यह क्षमता नहीं आ पायी थी कि जल से बहुत दूर रह सकें। आजकल के मेंढकों की तरह उन्हें अण्डे देने के लिए जल में जाना पड़ता था और उनके बच्चे अपना प्रारम्भिक जीवन जल ही में व्यतीत करते थे। इसी प्रकार इस काल की वनस्पति को भी अपनी जड़ जल ही में फैलानी पड़ती थी। इतना होने पर भी इस युग में पृथिवी पर वनस्पति का अत्यधिक बाहुल्य रहा। अधिकांश उसी के अवशेष कोयले के रूप में आजकल खानों से खोदकर निकाले जाते हैं। इसलिए प्राचीन-जीवयुग के अन्तिम भाग को कार्बन कल्प' कहा जाता है।

(४) मध्य-जीवयुग (Mesozoic Age)—यह युग आज से लगभग २० करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ और ६ करोड़ वर्ष पूर्व तक चला। इसे द्वितीयक-युग (Secondary Period) भी कहते हैं। इस युग के प्रारम्भ में पृथिवी के जलवायु में अनेक परिवर्तन हुए जिनके कारण प्राचीन जीवयुग के वनस्पति और जीव जगत् का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो गया। कठिन परिवर्तन और कठिनाई के युग

मे ही प्राणियों मे नये प्रकार की क्षमताओं का विकास होता है। इसलिए जब जलवायु पुन साधारण अवस्था मे आती है तो हम पृथिवी पर सर्वथा नये प्रकार के पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं को निवास करते देखते हैं। ये पेड़-पौधे बीज देते थे जिनसे इनकी झीलों और दलदलों से दूर थोड़ी नमी मिलने पर ही वंशोन्नति हो सकती थी। इसी प्रकार नये जीवों को भी अपने अण्डे देने के लिए जल के समीप जाने की आवश्यकता न रही। अब उनके अण्डों मे जीव का गर्भ मे रहते हुए ही इतना विकास हो जाता था कि वे जन्म लेते ही सीधे हवा मे सांस ले सकें। यह प्राणी सरीसृप (Reptile) जाति के थे, जैसे बड़े-बड़े सर्प, अजगर, मगर-मच्छ, कछुए इत्यादि। ये सभी सरीसृप आजकल भी दिखाई देते हैं लेकिन उस काल मे सरीसृपों का पृथिवी पर न केवल बाहुल्य था वरन् आकार भी बहुत बड़ा होता था। उनमे कुछ, जैसे दीनोसॉर्स (Denosaurs), गाइगेन्तोसॉरस (Gigantosaurus), प्लेजिओसॉर्स (Plesiosaurs), टाइरनोसॉरस (Tyrannosaurus) और डिप्लोडोकस् (Diplodocus) इत्यादि ७०-८० फुट से १०० फुट तक और कभी-कभी इससे भी अधिक लम्बे होते थे (चित्र ३)। इसलिए मध्य-जीवयुग को सरीसृप कल्प (Age of Reptiles) भी कहा जाता है।

चित्र ३ : मध्यजीव युग का एक डिप्लोडोकस्

नव-जीवयुग (Cainozoic Age)—यह युग अब से ६ करोड़ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और अब तक चल रहा है। इस युग के प्रारम्भ मे पृथिवी पर भारी शीत पड़ा जिसमे सरीसृप, जो इसे सहन नहीं कर सकते थे, नष्ट हो गये। ऐसे समय मे प्राणियों मे खूब जीवन-संघर्ष चला होगा और उन्हें स्वयं को प्रकृति के अनुकूल बनाने के लिए कठोर साधना करनी पड़ी होगी। इस समय पृथिवी की प्राकृतिक दशा में भी परिवर्तन हुए। हिमालय पर्वत, आल्प्स्, राकीज तथा ऐंडीज पर्वत अस्तित्व मे आये और महाद्वीपों और महासागरों को उनसे मिलता-जुलता स्वरूप मिला जिसमे वे आजकल मिलते हैं।

जलवायु मे सुधार होने पर हम वनस्पति को दलदलों से आगे बढ़कर सूखी भूमि पर फैलते देखते हैं। समस्त पृथिवी घास के मैदानों और जंगलों से परिपूर्ण

हो जाती है। इसके साथ ही नये प्रकार के जीव भी दिखाई देते हैं जिनमे पक्षी और स्तनपायी प्राणी (Mammals) प्रमुख हैं। इन जीवों की पहली झलक हमें मध्य-जीवयुग में ही मिलने लगती है। जिस समय पृथिवी पर सरीसृपों का बाहुल्य था, बहुत से प्राणियों को जीवन-संघर्ष में सफलता नहीं मिली। अतः वे ठण्डे प्रदेशों मे, जहाँ संघर्ष कम था, जाकर बस गये। वहाँ के शीत से उन्हें बचाने के लिए प्रकृति ने धीरे धीरे उन के शरीर को पखों से ढकना आरम्भ कर दिया। ये पख, बाद मे, उडने वाले पर बने। इन प्राणियों को, जो कालान्तर मे पक्षी कहलाये (चित्र ५, पृ० १४) अपने अण्डों को सेना होता था। कुछ अन्य प्राणियों के शरीर को शीत से बचाने के लिए प्रकृति ने बालों से ढक दिया। वे अपने अण्डों को सेने के स्थान पर बच्चा निकलने तक गर्भ मे ही रखने लगे, अर्थात् बच्चे का गर्भ मे पूर्णरूपेण विकास होने लगा। ऐसे बच्चों को जन्म लेने के बाद महीनों तक निर्वाह के लिए माता पर निर्भर रहना पडता था। इसके लिए मादा के शरीर में स्तन निकलने लगे। ये प्राणी स्तनपायी (Mammals) या दूध पिलाने वाले कहलाते हैं।
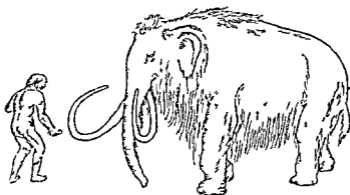
चित्र ४ मैमथ और हीडलबर्ग-मानव

मध्यजीव अथवा सरीसृप-युग में स्तनपायी प्राणी बहुत कम थे और केवल ठण्डे प्रदेशों में रहते थे। नव जीवयुग में उनकी संख्या और प्रकारों में अचानक वृद्धि हो जाती है और पृथिवी पर उनका उसी प्रकार शासन स्थापित हो जाता है जिस प्रकार मध्य जीवयुग में सरीसृप और प्राचीन-जीवयुग में मत्स्य वर्ग का था। ऊँट घोडा, हाथी, जिराफ हिरण, कुत्ता, शेर, बन्दर और मनुष्य ये सभी इसी प्रकार के प्राणी हैं। इन प्राणियों का प्रादुर्भाव जीवन के इतिहास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। अब तक जितने प्राणी सृष्टि मे आये थे उनकी विशेषता यह थी कि उन्हें जन्म से ही आत्मनिर्भर होना पडता था। इसका कारण माता-

वर्ष पूर्व से दो करोड वर्ष पूर्व तक चला। सम्भवत इस युग मे मानव की आकृति वाले छोटे छोटे बन्दर सरीखे प्राणी अस्तित्व मे आये।

(इ) मध्य-नूतन-युग (Miocene period) यह युग दो करोड वर्ष पूर्व से ७० लाख वर्ष पूर्व तक चला। हिमालय और आल्प्स् जैसे पर्वत सम्भवत इसी युग मे ऊँचे उठे। मनुष्य का अस्तित्व इस युग मे भी दिखाई नही देता।

(ई) अति-नूतन अथवा प्लीयोसीन युग (Pliocene period) यह युग ७० लाख वर्ष पूर्व से दस लाख वर्ष पूर्व तक चला। सम्भवत इस युग मे मनुष्य से मिलते-जुलते प्राणी का पृथिवी पर सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ। इस दृष्टि से यह युग पूर्वगामी युगो से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

चतुर्थककाल (Quaternary) को दो भागो मे बांटा जाता है—प्लीस्टोसीन तथा होलोसीन। ये दोनो युग मानव के इतिहास से घनिष्ठ रूप मे सम्बन्धित हैं।

(ए) प्रातिनूतन अथवा प्लीस्टोसीन युग (Pleistocene period) यह युग अब से दस लाख वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और लगभग १२ सहस्र वर्ष पूर्व तक चला। इस काल मे पृथिवी के जलवायु मे बार-बार घोर परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनो का कारण इस काल मे उत्तरी प्रदेशो मे चार बार भारी हिमपात होना है। प्रथम हिम युग (Ice Age) अब से लगभग छ लाख वर्ष पूर्व आया। इसके बाद पृथिवी का जलवायु पुन सुधर गया। इसे प्रथम अन्तर्हिम युग (Inter-glacial Age) कहते हैं। दूसरा हिमयुग लगभग चार लाख वर्ष पूर्व और तीसरा एक लाख पचहत्तर हजार वर्ष पूर्व आया। इनके बाद भी उसी प्रकार दो अन्तर्हिम-युग—दूसरा और तीसरा—आये। चौथा और अन्तिम हिमयुग अब से पचास हजार वर्ष पूर्व अपने चरम शिखर पर था। उसके बाद जलवायु मे पुन सुधार हुआ। आजकल हम चतुर्थ अन्तर्हिमयुग अथवा हिमोत्तर युग (Post-Glacial Age) मे रह रहे हैं। यूरोप मे हिमयुगो का अध्ययन विशेष रूप से आल्प्स् पर्वतीय प्रदेश मे किया गया है। वहाँ १९०९ ई० मे पेंक (Penck) तथा ब्रूकनर (Bruckner) नामक विद्वानो ने अन्वेषण करके 'अल्पाइन हिमयुग-क्रम' (Alpine Glacial Cycle) की प्रसिद्ध अवधारणा रखी। उन्होंने इन चारो हिम युगो को क्रमश गुंज (Gunz) मिन्डेल (Mindel) रिस्स (Riss) तथा वर्म (Wurm) नाम दिये हैं। उन्होंने यह भी खोज की कि द्वितीय अन्तर्हिमयुग अन्य दो अन्तर्हिमयुगो से बहुत बडा था। इसलिए उन्होंने इसे 'दीर्घ अन्तर्हिमयुग' (The Great Inter Glacial) नाम दिया। जिस समय उत्तरी प्रदेशो मे हिमयुग आते थे, लगभग उसी समय दक्षिणी प्रदेशो मे भारी वर्षा होती थी, इसलिए उन प्रदेशो मे दृष्टिकोण

से इन युगों को 'वर्षायुग' (Pluvial Ages) और अन्तर्हिमयुगों के समय को अन्तर्वर्षा युग (Interpluvial Ages) कहते हैं (तालिका ३)। प्लीस्टोसीन युग में ही 'मानव सम प्राणी' शनैः शनैः विकसित होकर 'पूर्ण मानव' के रूप में आता है। पुरातत्त्वविदों का पूर्व-पाषाणकाल इस युग के लगभग समानान्तर चलता है।

(ऐ) सर्व-नूतन अथवा हालोसीन युग (Holocene or Recent period) यह युग अब से १२ सहस्र वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और अभी तक चल रहा है। मानव सभ्यता के उत्तर पाषाणकाल और धातुकाल इसके अन्तर्गत रख जाते हैं। प्लीस्टोसीन और हालोसीन युगों में मानव के उद्भव और विकास तथा सभ्यता के निर्माण की मनोरंजक कथा का अध्ययन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

२

मनुष्य का आविर्भाव और प्रकृति पर विजय

So God created man in his own image, in the image of God created he him male and female created he them And God blessed them and God said unto them Be fruitful and multiply and replenish the earth and subdue it and have dominion over the fish of the sea and over the fowl of the air and over every living thing that moveth upon the earth —Genesis

मनुष्य का आविर्भाव

लुप्त कड़ी की समस्या—मनुष्य का प्रादुर्भाव कैसे हुआ यह प्रश्न अभी तक समस्या बना हुआ है। विश्व के अधिकांश धर्मों में बताया गया है कि मनुष्य का निर्माण स्वयं ईश्वर ने किया था। लेकिन आधुनिक काल में नूतन शास्त्रीय विकासवाद (Theory of Evolution) के अनुसार (पृ० ६) जिसका सर्वप्रथम प्रतिपादन डार्विन ने अपनी पुस्तक *Descent of Man* में किया यह मत प्रकट करने

हैं कि मनुष्य नर-वानर (Primate) परिवार का सदस्य है और उसके तथा इस परिवार के अन्य प्राणियों—बन्दर, लंगूर, गोरिल्ला, चिम्पांजी तथा एप इत्यादि के पूर्वज एक ही थे।[१] इन पूर्वजों का विकास स्तनपायी जीवों के किसी प्राचीनतर परिवार से और मूलतः प्रारम्भिक जीव-युग के प्राणियों से हुआ होगा। बहुत से मानवेतर प्राणियों जैसे घोड़ा और ऊँट, का इस प्रकार का क्रमिक विकास सिद्ध करने योग्य साक्ष्य उपलब्ध हो गये हैं, परन्तु अभाग्यवश मानव के विकास की क्रमिक अवस्थाओं को सिद्ध करने योग्य पर्याप्त सामग्री अभी तक नहीं मिल पायी है। उसके विकास के बीच की कड़ी जिसे नृवंशशास्त्री लुप्त कड़ी (Missing link) कहते हैं अभी तक अज्ञात है। लेकिन इस कड़ी के न मिलने से यह सिद्ध नहीं होता कि विकासवाद एक दोषपूर्ण सिद्धान्त है। यह भी हो सकता है कि हम इन कड़ियों को खोजने में असफल रहे हों। जैसा कि हम देख चुके हैं प्राचीनतम मानव और अन्य प्राणियों के विकास का अध्ययन करने का प्रमुख साधन स्तरीय चट्टानें हैं। स्मरणीय है कि स्तरीय चट्टानों में अधिकांशतः उन्हीं जीवों के अवशेष मिलते हैं जो जल में डूब जाते थे। लेकिन प्रारम्भिक मानव के तैरना न जानने के कारण गहरे जल में जाने और डूबने की सम्भावना कम थी, इसलिए उसके प्रस्तरित अवशेष स्तरीय चट्टानों में विरल और दुष्प्राप्य हैं। दूसरे स्तरीय चट्टानों का अध्ययन सभी देशों में भलीभाँति नहीं हो पाया है। एशिया और अफ्रीका के विशाल भूखंड अभी तक अनन्वेषित ही हैं। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीनतम मानवों की संख्या बहुत अधिक नहीं रही होगी। इसलिए उनके अवशेषों के पर्याप्त मात्रा में न मिलने और उनके विकास में कुछ कड़ियों का अभाव होने से विकासवाद का खंडन नहीं कहा जा सकता।

मनुष्य का आदिपूर्वज—मनुष्य का आदि पूर्वज कौन सा प्राणी था इसके विषय में बहुत सी भ्रान्त धारणायें प्रचलित हैं। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि विकासवादी मनुष्य का आदिपूर्वज बन्दर को मानते हैं। यह बात नहीं है। विकासवादी मनुष्य का विकास बन्दर से नहीं वरन् किसी एन्थ्रोपाएड एप से मानते हैं।

---

१ मनुष्य की प्राचीनता का प्रतिपादक सर्वप्रथम बूशे द पर्थ (Boucher de Perthes) नामक विद्वान ने किया। उसने १८४७ ई० में सोम (Somme) नदी की घाटी में एब्बेविल स्थान के पुराने स्तर (Terrace) से एक मानव निर्मित पाषाणोपकरण प्राप्त किया। इस उपकरण के साथ अन्य प्राणियों के अस्थि-अवशेष मिले जिनका प्राचीनतम होना असंदिग्ध था। १८५९ ई० में जिस वर्ष डार्विन की *Origin of Species* पुस्तक प्रकाशित हुई प्रेस्टविच, इवान्स तथा फाल्कनर नामक सुप्रसिद्ध अंग्रेज भूगर्भशास्त्रियों ने रायल सोसाइटी के सम्मुख पर्थ के मत का समर्थन किया और १८६३ ई० में लायल (Lyell) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Geological Evidence of the Antiquity of Man प्रकाशित कराई।

मनुष्य की सफलता का रहस्य

मनुष्य की प्रकृति और अन्य प्राणियों पर विजय के कारण—मनुष्य एक स्तनपायी प्राणी है। उसके शिशु को जन्म लेने के बाद वर्षों तक माता पिता की सरक्षता में रहना पड़ता है। इससे उसे न केवल अपने माता पिता के वरन् समस्त समाज के सामूहिक अनुभवों से लाभ उठाने का अवसर मिलता है। इस प्रकार सामूहिक अनुभवों का भंडार भरता रहता है। इसके विपरीत अन्य प्राणियों को अधिकांशतः जीवन में अकेले संघर्ष करना पड़ता है और अपने ही अनुभवों के अनुसार चलना होता है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि यह सुविधा सभी स्तनपायी प्राणियों को प्राप्त है। यह भी स्पष्ट ही है कि प्राचीनतम मनुष्य संख्या में और शारीरिक शक्ति के क्षेत्र में शेर, गजराज और भालू इत्यादि के साथ प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकता था। फिर मनुष्य को ही प्रकृति तथा अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करने में सफलता क्यों मिली?

मनुष्य को जीवन संघर्ष में अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिली, इसका कारण है उसकी अपने को वातावरण के अनुकूल बना लेने की क्षमता। उसको प्रकृति ने ऐसा बनाया है जिससे वह अन्य प्राणियों की तुलना में कठिनाइयों पर अधिक आसानी से विजय प्राप्त कर सकता है। वह जिन उपकरणों से सहायता लेता है वे अन्य प्राणियों के उपकरणों से सर्वथा भिन्न और उच्चकोटि के होते हैं। इनमें वाक् शक्ति मस्तिष्क और हाथ प्रमुख हैं।

(१) मनुष्य की वाक्-शक्ति अन्य प्राणियों से अधिक समुन्नत है। वह अपने गले से विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकाल सकता है। यह लाभ कुछ अन्य प्राणियों को भी प्राप्त है परन्तु मनुष्य जितने प्रकार की ध्वनियाँ कर सकता है उतनी अन्य प्राणी नहीं कर सकते। सामाजिक जीवन व्यतीत करने का उसे एक लाभ यह भी हुआ कि वह इन ध्वनियों को सर्वसम्मत अर्थ दे सका। मानव शिशु जब बोलना सीखता है तब इसका अर्थ होता है उसका इन ध्वनियों के सर्वसम्मत अर्थों को जानना। हम इनको भाषा कहते हैं। भाषा के माध्यम से सामाजिक अनुभवों से लाभ उठाने अर्थात ज्ञानोपार्जन में सुविधा होती है। उदाहरणार्थ इससे मनुष्य अपने बच्चे को बता सकता है कि उसे शेर के दिखाई देने पर क्या करना चाहिए। भाषाहीन प्राणी अपने शिशुओं को यह शिक्षा नहीं दे सकते।

(२) सामाजिक अनुभवों और भाषा के माध्यम से मनुष्य की विचार-शक्ति समुन्नत होती है। जब हम नारंगी शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारे मस्तिष्क में वास्तविक नारंगी के स्थान पर नारंगी का भाव चित्र होता है। इस प्रकार के भाव-चित्रों को मिलाकर असंख्य भाव चित्रों को, जिनका वास्तविक जीवन से

कोई सम्बन्ध नहीं होता, उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण के लिए हम 'वृक्ष' और 'चाँदी' के भावों को मिलाकर 'चाँदी का पेड़' भाव उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम सोच सकते हैं। सोचने या विचार कर सकने की शक्ति मनुष्य का सबसे बड़ा हथियार है। भाषा से तो उसे केवल अपने माता-पिता और समाज के अनुभवों का लाभ प्राप्त होता है परन्तु विचार शक्ति की सहायता से वह कठिनाइयों पर स्वयं विजय प्राप्त कर सकता है। आग कपड़े को जला सकती है, यह बात मनुष्य कपड़े को जलते हुए देखे बिना सोच सकता है। यह शक्ति अन्य जीवों को प्राप्त नहीं है।

(३) मनुष्य के हाथ पहले अन्य चतुष्पदों के अगले पैरों की तरह शरीर का भार ढोने के काम में आते थे। बाद में जब मनुष्य दो पैरों पर खड़ा होकर चलने लगा तो उसके अगले पैर अर्थात हाथ स्वतन्त्र हो गये। इनसे मनुष्य विविध प्रकार की क्रियाएँ कर सकता है। अन्य प्राणियों के हथियार अर्थात् पंजा, चोंच, और नाखून इत्यादि उनके शरीर के साथ जुड़े होते हैं और कुछ सीमित प्रकार की क्रियाएँ ही कर सकते हैं। लेकिन मनुष्य के हाथ के अँगूठे और अंगुलियों की बनावट ऐसी है कि वह इनसे अनेक प्रकार के हथियार और उपकरण बना सकता है। यह सुविधा भी अन्य प्राणियों को प्राप्त नहीं है।

मानव सभ्यता के प्रमुख युग

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनुष्य और अन्य प्राणियों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि मनुष्य अपनी सुरक्षा और आजीविका के लिए हथियारों और औजारों का निर्माण करता है जबकि अन्य प्राणियों के हथियार उनके शरीर के साथ जुड़े होते हैं। इसका आशय यह नहीं है कि मनुष्य आदिकाल से ही हथियारों का निर्माण करना जानता था। प्रारम्भ में वह निश्चित रूप से वृक्षों की डालों और नैसर्गिक प्रस्तर-खण्डों का हथियार के रूप में प्रयोग करता था। दूसरे शब्दों में वह औजार निर्माता के बजाय औजार-उपभोक्ता मात्र था। धीरे-धीरे अनुभव बढ़ने पर उसने स्वयं हथियार बनाना सीखा। यह स्पष्ट है कि उसके प्रारम्भिक औजार और हथियार बहुत साधारण रहे होंगे। लेकिन ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया उसके हथियार अधिकाधिक सुन्दर, मजबूत और उपयोगी होते गये। अतः मनुष्य के औजार वस्तुतः उसकी यान्त्रिक औद्योगिक और वैज्ञानिक सफलताओं के प्रतीक हैं। इन हथियारों और औजारों को बनाने में उसने जिन द्रव्यों का उपयोग किया उनके अनुसार पुरातत्ववेत्ताओं ने सभ्यता के इतिहास को दो भागों में विभाजित किया है—पाषाणकाल और धातुकाल। अध्ययन की सुविधा के लिए इन कालों को अधोलिखित युगों में बाँटा जा सकता है।

(१) पाषाणकाल (The Stone Age) मानव-सभ्यता के इतिहास का प्रथम युग पाषाणकाल कहलाता है, क्योकि इस काल मे मनुष्य के हथियार और औजार मुख्यत पाषाण के बनते थे। इस दीर्घकाल मे, जो लगभग प्लीस्टोसीन युग के समानान्तर चलता है, मानव के इतिहास का लगभग ९९% अश आ जाता है। उसने अपने अस्तित्व के प्रारम्भ मे जो पाषाण उपकरण बनाये व देखने मे स्वाभाविक प्रस्तर-खण्डो के समान लगते है। इन उपकरणो को इयोलिथ (Eolith) और उस युग को, जिसमे इनका निर्माण हुआ, पाषाणयुग का उषःकाल (Eolithic Age) कहते हैं।

प्रथम अन्तर्हिमयुग से हमे ऐसे पाषाण-औजार मिलने लगते हैं जिनको मानव-निर्मित कहने मे कोई सन्देह नही हो सकता। ऐसे पाषाण उपकरणो को तीन युगों मे विभाजित किया जा सकता है —

(अ) पूर्व-पाषाणकाल—(Palaeolithic Age or Old Stone Age) यह युग अब से पाँच-छ लाख वर्ष पूर्व से लगभग १२ हजार वर्ष पूर्व तक चला। इस काल मे मानव की आजीविका शिकार और जगली फलमूल पर निर्भर थी। वह पशु-पालन या कृषि-कर्म मे परिचित नही था। उसके हथियार भी, कम-से-कम प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल (Early Palaeolithic Age) मे, बहुत भद्दे और बेडौल होते थे। लेकिन मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में (Middle Palaeolithic Age), जिस समय यूरोप मे नियण्डर्थल जाति निवास करती थी, कुछ अच्छे हथियार बनने लगे। नियण्डर्थल-युग का अन्त अब से लगभग तीस चालीस सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। उस समय तक विश्व मे जितनी मानव जातियाँ रही, वे सब आधुनिक मानव जाति से मिलती जुलती होने पर भी शरीर-सरचना की दृष्टि से कुछ भिन्न थी। लेकिन परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल (Upper Palaeolithic Age) मे जो जातियाँ दिखाई देती हैं वे *निश्चित रूप से आधुनिक मेधावी मानव जाति (Homo sapiens) की पूर्वज थी।* इस काल के मानवो की कलाकृतियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। आज भी मलाया, दक्षिणी अफ्रीका तथा उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया मे ऐसी जातियाँ हैं जिनका रहन-सहन पूर्व-पाषाणकालीन मानवो के ढग का है।

(आ) मध्य-पाषाणकाल (Mesolithic or Middle Stone Age) पूर्व-पाषाणकाल और नव-पाषाणकाल के मध्य मे कुछ स्थानो पर मानव सस्कृति एक सक्रान्ति काल से गुजरती है जिसे पुरातत्त्व मे मध्य पाषाणकाल कहा जाता है। शेष स्थानो पर पूर्व-पाषाणकाल के पश्चात् उत्तर-पाषाणकाल तुरन्त प्रारम्भ हो जाता है।

(इ) उत्तर-पाषाणकाल (Neolithic or New Stone Age) अब से लगभग

दस सहस्र वर्ष पर्व मानव सभ्यता का दूसरा युग प्रारम्भ हुआ। भगर्भशास्त्र की दृष्टि से यह हालोसीन काल का पूववर्ती भाग कहा जा सकता है। इस काल म मनुष्य ने पालिशयुक्त सुन्दर पाषाण उपकरण बनाये और बढती हुई आबादी की समस्या का हल करने के लिए पशुपालन और कृषि करना प्रारम्भ किया। इससे उसकी आर्थिक व्यवस्था पूर्व-पाषाणकाल से एकदम परिवर्तित हो जाती है। बहुत से स्थानो पर आदिम जातियाँ आज भी इस प्रकार की जीवन प्रणाली अपनाये हुए हैं।

(२) धातुकाल—धातुकाल अब से ६ ७ सहस्र वर्ष पूर्व सिन्धु नदी की घाटी स लेकर मिश्र और क्रीट तक विस्तृत भूप्रदेश म प्रारम्भ हुआ। इसको हम तीन भागो म बाँट सकते हैं —

(अ) ताम्रकाल—धातुकाल के प्रारम्भ मे लगभग दो सहस्र वर्ष से अधिक समय तक मनुष्य मुख्यत ताम्र को अपने अस्त्र शस्त्र और उपकरण बनाने क लिये प्रयुक्त करता रहा। ताम्र के उपयोग के साथ पाषाण का प्रयोग भी बराबर होता रहा इसलिए इस युग को ताम्र प्रस्तरयुग भी कहा जाता है। इस युग मे पाल-दार नाव, पहिये और कुम्हार का चाक आविष्कृत हुए तथा पहिये और पशुओं की भारवाहक शक्ति क सयोग स बैलगाडियाँ बनाई गईं। इन आविष्कारो के परिणाम-स्वरूप समाज म विशिष्ट वर्ग अस्तित्व म आये तथा व्यक्ति और ग्रामो की आत्म-निर्भरता कम हुई।

(आ) कांस्यकाल—ताम्रकाल के अन्त म मनुष्य न ताम्र मे टिन मिलाकर कांस्य बनाने की विधि का आविष्कार किया। इसस अधिक मजबूत उपकरण बनाना सम्भव हो गया। कांस्य के उपकरण बनाने वाले कारीगरो तथा कांस्य प्राप्त करने वाले तथा इससे निर्मित उपकरणो का आयात निर्यात करने वाले व्यापारियो के लिए कृषि-कर्म मे रुचि लेना सम्भव नही था। समाज के कुछ वर्गों के खाद्यान्न उत्पादन से दूर हट जाने और आबादी बढ जाने के कारण अधिका धिक भूमि म कृषि करने की आवश्यकता हुई। इसलिये इस युग मे मनुष्य नदियो की उर्वर घाटियो म बसने लगता है जिससे बाँध बनाकर और नहरें निकाल कर वह भूमि की उर्वरता से लाभ उठा सके। परन्तु नदियो को नियन्त्रित करने के लिए विशाल मानव समूहो का स्थायी रूप से एक स्थान पर रहना आवश्यक था। इससे धीरे धीरे नगर अस्तित्व म आये। इन नगरो के शासको को अपने व्यापारियो के काफिलों की सुरक्षा और आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए सैनिको कानूनो और न्यायालयो की तथा हिसाब किताब रखने के लिये लिपिको की आवश्यकता पडी। लिपि का आविष्कार हो जाने से नगर-सभ्यताओं के उदय के साथ-साथ एतिहासिक युग भी प्रारम्भ हो जाता है।

(इ) लौहकाल—लगभग १२०० ई० पू० मे पश्चिमी एशिया मे लोहे का साधारण उपकरण बनाने के लिय प्रयोग किया जाने लगा। लोहा कांस्य की तुलना म अधिक आसानी से सुलभ हो जाता था और इसस बने हथियार तथा औजार अधिक प्रभावकारी और टिकाऊ होते थे। कृषि कर्म मे भी लोहे के औजारो का प्रयोग करके उत्पादन बढाया जा सकता था। अतएव तब से लोहा मानव के प्रयोग मे आने वाली प्रमुखतम धातु बन गया। आज भी हम वस्तुत लोहयुग म ही रह रहे हैं।
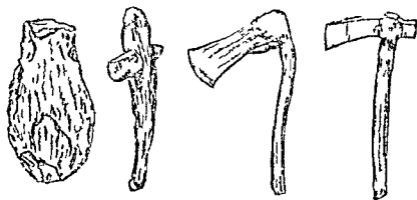
ऊपर दिए गए चित्र म प्रागैतिहासिक मानव के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हथियार—कुल्हाड़ी—के क्रमिक विकास की अवस्थाएँ प्रदर्शित की गई है। (१) पूर्व-पाषाणकालीन मानव का मुष्टि छुरा (२) नव-पाषाणकालीन मानव की पालिशदार लकड़ी के हत्थे वाली कुल्हाड़ी का नमूना, (३) ताम्र काल की धातु की कुल्हाड़ी जिसे लकड़ी के हत्थे म लगाकर बाँध दिया जाता था और (४) लौह युग की लोहे की कुल्हाड़ी जिसका प्रयोग भारत म अब तक होता है।

३
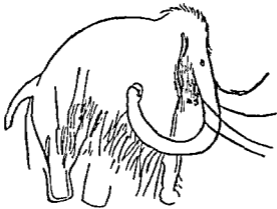
पाषाणकाल का उपःकाल

पाषाण काल का प्रारम्भ

प्रारम्भिक उपकरण—प्राचीनतम मानव के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या तत्कालीन बनैले पशुओं से अपनी रक्षा करना और खाद्य-सामग्री एकत्र करना था। वह अन्य पशुओं से संख्या में कम था और शारीरिक शक्ति की दृष्टि से भी उनसे प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकता था। परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं, उसके हाथों की बनावट अन्य किसी भी प्राणी के हाथों की बनावट से उत्तम थी। वह इनकी सहायता से मिट्टी और पत्थर के ढेला तथा वृक्षों की डालों को हथियार के रूप में प्रयुक्त करके अपनी शारीरिक शक्ति की कमी को पूरा कर सकता था। जिस प्रकार हम पेड़ से फल तोड़ने, नारियल जैसे कठोर फल को फोड़ने तथा किसी उद्धत पशु को भगाने के लिये छड़ी या पत्थर का ढेला उठा लेते हैं, उसी प्रकार आदि मानव भी वृक्षों से फल तोड़ने, कन्द मूल खोदकर निकालने तथा पशुओं को मार भगाने के लिये इनसे सहायता लेता था। लेकिन ये हथियार

इस पृष्ठ के ऊपर दिया गया चित्र परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल के एक कलाकार की कृति है। इस चित्र में कलाकार मैमथ के आकार को स्वाभाविक रूप में दिखाने में पूर्णतः सफल हुआ है। द्रष्टव्य है कि उसने मैमथ के दो पैरों का केवल संकेत दिया है, फिर भी चित्र की स्वाभाविकता में कमी नहीं आ पाई है। *तुलना कीजिए आधुनिक कलाकार द्वारा बनाई गई मैमथ की आकृति से* (चित्र ४, पृ० ११)।

बहुधा अपने नैसर्गिक रूप में होते थे अतः इनको मानव निर्मित उपकरणों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। दूसरे लकड़ी एक नश्वर द्रव्य है। इसके बने हुए इतने पुराने उपकरणों के नमूने आजकल प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिए अगर प्राचीनतम मनुष्य ने वृक्षों की नैसर्गिक डालों को अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें कुछ सुधार किया भी होगा तो उसे जानने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन पत्थर के साथ यह बात नहीं है। यह एक बहुत ही मजबूत और टिकाऊ पदार्थ है। मनुष्य इसकी उपयोगिता से बहुत प्राचीन युग में ही परिचित हो गया था। विशेषतः छोटे छोटे पशुओं का शिकार करने और मांस को खाल से पृथक करने में उस पत्थर के टुकड़े से बहुत सहायता मिलती थी। ऐसे पत्थर के टुकड़े उसे इधर-उधर पड़े मिल जाते थे। लेकिन जब प्रस्तर-खण्ड उसकी आवश्यकतानुसार नोकीले या धारदार नहीं होते थे तो उन्हें तोड़कर इच्छित रूप देना पड़ता था। एक बार प्रस्तर खण्ड तोड़कर उसे इच्छित रूप देने का भाव आ जाने पर प्रगति सहज हो गई। उसको धीरे धीरे यह समझ में आ गया कि ऐसे औजारों से न केवल मांस को खाल से पृथक किया जा सकता है वरन् और बहुत से काम लिए जा सकते हैं।

चित्र ६ उप पाषाणकालीन उपकरण

इयोलिथों की समस्या—लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि मनुष्य को एकदम विविध प्रकार के सुन्दर हथियार बनाना आ गया था। इसके विपरीत उसको यह कला सीखने में सहस्रों ही नहीं लाखों वर्ष लगे। उसके द्वारा बनाए गये प्राचीनतम हथियार देखने में बिलकुल नैसर्गिक पाषाण खण्ड प्रतीत होते हैं। इनके बनाने में किसी प्रकार के कौशल का प्रदर्शन नहीं किया गया है केवल

हाथ मे ठीक से पकड़ने या इच्छित नोक बनाने के लिये प्रस्तर-खण्ड का कुछ अश तोड दिया गया है (चित्र ६)। इनम और स्वाभाविक प्रस्तर-खण्ड मे भेद करना बडा कठिन है। इसलिए पुरातत्ववेत्ताओ मे पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक से ही, जब ये उपकरण सर्वप्रथम प्रकाश मे आये, यह विवाद चल रहा है कि इनको नैसर्गिक प्रस्तर-खण्ड माना जाय या मानव निर्मित-औजार। आजकल अधिकाश विद्वान् इन्हें मानव निर्मित मानते हैं। इन हथियारो की तिथि प्लीयोसीन युग के अन्तिम भाग से लेकर प्रथम अन्तर्हिमयुग तक मानी जाती है। पुरातत्त्ववेत्ता इनको इयोलिथ या 'उपकालीन पाषाण उपकरण' (Eolith या Dawn Stone) और जिस युग मे ये निर्मित हुए उस 'उपकालीन पाषाणयुग' (Eolithic Age) कहते हैं।

उपपाषाणकालीन मानव का जीवन—उदयकालीन पाषाणयुग मे मनुष्य सम्भवत छोटे-छोटे समूहो मे रहता था। उसका समय भोजन की खोज करने और अन्य पशुओ से अपनी रक्षा करते रहने म व्यतीत होता था। उसका भोजन साधारणत जगली बेर, फल, अखरोट, कन्दमूल और आसानी से सुलभ होने वाले कीट इत्यादि थ। वह सम्भवत छोटे छोटे पशुओ और पक्षियो का शिकार भी करता था। उसके सम्बन्धी, नर-वानर परिवार के अन्य सदस्य शाकाहारी थ, लेकिन स्वय उसने अपने अस्तित्व के किसी युग म माँसाहार प्रारम्भ कर दिया था। क्योकि पर्व-पाषाणकाल के प्रारम्भ म मनुष्य घोर माँसाहारी था, अत यह अनुमान किया जा सकता है कि पाषाणयुग के उदयकाल मे भी वह मास खाता होगा। अफ्रीकी मानव के (ऑस्ट्रलोपिथक्स अफ्रीकेनस्), जिसका सम्बन्ध इस युग से प्रतीत होता है माँसाहारी होने के कुछ प्रमाण मिलत है। मासाहार करने से मनुष्य को बहुत सुविधा हुई, क्योकि अब वह ऐसे स्थानो पर भी रह सकता था जहाँ फल-मूल न मिलते हो। वह आग का उपयोग जानता था या नही, यह कहना कठिन है।

बहुधा अपने नैसर्गिक रूप में होते थे, अतः इनको मानव निर्मित उपकरणों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। दूसरे, लकड़ी एक नश्वर द्रव्य है। इसके बने हुए इतने पुराने उपकरणों के नमूने आजकल प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिए अगर प्राचीनतम मनुष्य ने वृक्षों की नैसर्गिक डालों को अधिक उपयोगी बनाने के लिये उनमें कुछ सुधार किया भी होगा तो उसे जानने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन पत्थर के साथ यह बात नहीं है। यह एक बहुत ही मजबूत और टिकाऊ पदार्थ है। मनुष्य इसकी उपयोगिता से बहुत प्राचीन युग में ही परिचित हो गया था। विशेषतः छोटे छोटे पशुओं का शिकार करने और मांस को खाल से पृथक करने में उसे पत्थर के टुकड़े से बहुत सहायता मिलती थी। ऐसे पत्थर के टुकड़े उसे इधर-उधर पड़े मिल जाते थे। लेकिन जब प्रस्तर-खण्ड उसकी आवश्यकतानुसार नोकीले या धारदार नहीं होते थे तो उन्हें तोड़कर इच्छित रूप देना पड़ता था। एक बार प्रस्तर खण्ड तोड़कर उसे इच्छित रूप देने का भाव आ जाने पर प्रगति सहज हो गई। उसको धीरे-धीरे यह समझ में आ गया कि ऐसे औजारों से न केवल मांस को खाल से पृथक किया जा सकता है वरन् और बहुत से काम लिये जा सकते हैं।

चित्र ६ उप पाषाणकालीन उपकरण

इयोलिथों की समस्या—लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मनुष्य को एकदम विशिष्ट प्रकार के सुन्दर हथियार बनाना आ गया था। इसके विपरीत उसको यह कला सीखने में सैकड़ों ही नहीं लाखों वर्ष लगे। उसके द्वारा बनाए गये प्राचीनतम हथियार देखने में बिल्कुल नैसर्गिक पाषाण-खण्ड प्रतीत होते हैं। इनके बनाने में किसी प्रकार के कौशल का प्रदर्शन नहीं किया गया है केवल

जावा-मानव के समकालीन अथवा उससे कुछ प्राचीनतर मानव के अवशेष चीन मे पेकिंग नगर से ३७ मील दूर चोउ-कोउ-तिएन नाम की गुफाग्रो से प्राप्त हुये हैं। इनकी खोज १९२९ ई० मे डब्लू० सी० पेई नामक चीनी विद्वान् ने की। १९३७ ई० तक इस मानव के चालीस अस्थि-पिंजर प्राप्त हुये जिनमे चौदह कपाल भी थे। इन अस्थियो के मानव को चीनी-मानव (Sinanthropus) कहते हैं (चित्र १२)। यह मानव जावा-मानव के सदृश खडा हो कर चलता था

चित्र १२ . चीनी-मानव

इसलिए इसे 'पेकिंग का पिथेकेन्थ्रोपस्' (Pithecanthropus Pekinensis) नामभी दिया गया है। पेकिंग-मानव बहुत सी बातो मे जावा-मानव से मिलता-जुलता था, परन्तु उसका मस्तिष्क १०७५ घन सेन्टीमीटर था और वाणी का क्षेत्र जावा-मानव से अधिक विकसित था। उसकी अस्थियो के समीप बहुत से पशुओं की हड्डियाँ और अग्नि के चिह्न मिले हैं, जिनसे स्पष्ट है कि यह अग्नि के उपयोग से परिचित था। यह पाषाण उपकरणो का भी निश्चित रूप से प्रयोग करना जानता था।

यूरोप के मानवसम प्राणी—सन् १९५२ ई० तक कुछ विद्वानो का यह विश्वास था कि अफ्रीका और एशिया के समान यूरोप को भी मानव के विकास का आदि स्थल माना जा सकता है। इस विश्वास का आधार इगलैण्ड के ससेक्स प्रदेश के पिल्टडाउन (Piltdown) स्थान मे प्राप्त प्रस्तरित-मानव-अवशेष थे। १९१२ ई० मे चार्ल्स डॉसन नामक व्यक्ति ने यह घोषित किया कि उसे उपर्युक्त स्थान से ऐसे प्राणी के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिसका समय प्रारम्भिक-प्लीस्टोसीन

निर्मित होने में सन्देह नहीं किया जा सकता। इन औजारों में प्राचीनतम स्थान 'मुष्टि छुरे'(Coup de poing या Handaxe) को प्राप्त है। यह औजार सामने की ओर नोकीला और अगल बगल धारदार होता था। पीछे की ओर इसे गोल रखा जाता था जिससे हाथ में पकड़ने में आसानी हो(चित्र १४)। प्रारम्भ में इसी एक औजार से मनुष्य हथौड़े, छुरे, कुल्हाड़ी, छेनी, बर्मे, भाले, आरी और खुर्चन-यन्त्र (Scraper) का काम ले लेता था। इसी से वह पशुओं का शिकार करता था, खाल को खुरचकर साफ करता था तथा कन्द मूल खोदकर निकालता था। लेकिन ज्यों-ज्यों मनुष्य का अनुभव बढ़ता गया, वह विभिन्न प्रकार के कार्य करने के लिए विभिन्न प्रकार के औजार बनाने लगा। इन औजारों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—आन्तरिक या 'कोर' (Core) हथियार फलक या 'फ्लेक' (Flake) हथियार तथा चॉपर (Chopper) हथियार (मानचित्र २)।

आन्तरिक उपकरण—आन्तरिक या कोर(Core) हथियार बनाने के लिए एक बड़े प्रस्तर-खण्ड से कुछ छिलका या फलकों को इस प्रकार अलग कर दिया जाता था कि बीच का भाग जिसे आन्तरिक या गूदा (Core) कहा जा सकता है एक हथियार के रूप में बच जाय। इस प्रकार के प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण युगीन हथियार अफ्रीका, सीरिया, पलस्टाइन, पश्चिमी यूरोप(स्पेन, फ्रांस, और इंगलैण्ड) और दक्षिणी भारत में मिले हैं।

विकास की दृष्टि से प्रारम्भिक-पूर्व पाषाणकाल के 'कोर' हथियारों को तीन 'संस्कृतियों'[1] में बाँटा जाता है। सर्वप्रथम इनकी खोज और अध्ययन फ्रांस में हुआ इसलिए इनका नामकरण वहीं के स्थानों के नाम पर किया गया है।

(अ) प्रारम्भिक चैलियन संस्कृति(Early Chellean Culture)—इसको यह नाम फ्रांस में पेरिस से ८ मील दूर स्थित चैलेस नामक स्थान में प्राप्त हथियारों के कारण दिया गया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इस संस्कृति का जन्म-स्थान

१ पुरातत्त्व में 'संस्कृति' (Culture) और 'उद्योग'(Industry) शब्दों का बहुधा प्रयोग किया जाता है। इस संदर्भ में संस्कृति का अर्थ उस मानव-समूह के लिए होता है जिसके उपकरण अस्त्र शस्त्र और मृद्भाण्ड इत्यादि एक से हों। यह आवश्यक नहीं है कि वह मानव-समूह एक ही जाति का हो। संस्कृतियों के नाम बहुधा उन स्थानों पर रखे जाते हैं जहाँ वे उपकरण पहली बार मिले, जैसे चैलेस के नाम पर चैलियन क्लैक्टन के नाम पर क्लैक्टोनियन इत्यादि। इसके विपरीत उद्योग (Industry) किसी एक स्थान पर एक मानव समूह द्वारा निर्मित उपकरणों को कहते हैं। उदाहरण के लिए सेंट अश्यूल से प्राप्त उपकरण 'अश्यूलियन-उद्योग' कहलायेंगे और होक्स्ने से प्राप्त उपकरण 'होक्सने उद्योग', परन्तु इन दोनों स्थानों के उद्योग एक ही संस्कृति—अश्यूलियन—के अन्तर्गत आयेंगे।

भी फ्रांस ही है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति मध्य अफ्रीका में हुई। कालान्तर में यह पश्चिमी यूरोप और दक्षिण एशिया में फैली। इस संस्कृति के मुष्टिछुरे (Coup de-poing) एवं दम सादे है। इनके बनाने में कोई कौशल प्रकट नहीं किया गया है। इनमें बहुत से तो इयोलिथ के समान नैसर्गिक पाषाण-खण्ड मालूम होते हैं। इनकी तिथि द्वितीय हिमयुग के लगभग रखी जा सकती है। सम्भवतः इस समय पृथिवी पर पिथक्न्थ्रोपस मानव विचरण कर रहा था।

चित्र १३ चैलियन-मुष्टिछुर

(आ) **चैलियन या एब्बविलियन संस्कृति** (Chellean or Abbevillian Culture)प्रारम्भिक-चैलियन युग के कुछ बाद में चैलियन या एब्बविलियन संस्कृति का काल आता है। यह काल द्वितीय अन्तर्हिमयुग के प्रारम्भ तक चलता है। इस युग में पूर्व-चैलियन मुष्टिछुरे को दोनों तरफ से फलक उतार कर अधिक उपयोगी बनाया जाने लगा। इस समय पृथिवी पर सम्भवतः पिथक्न्थ्रोपस मानव के वंशज तथा हीडलबर्ग मानव विचरण कर रहे थे।

(इ) **अच्यूलियन संस्कृति**(Acheul an Culture)—इस संस्कृति का समय द्वितीय अन्तर्हिमयुग के मध्य से तृतीय अन्तर्हिमयुग के अन्त तक चलता है। इस काल के उपकरण पूर्वगामी युग के उपकरणों से अधिक अच्छे और नोकीले हैं। अब इन की आकृति बादाम से मिलती-जुलती हो जाती है। आन्तरिक से अलग हुए फलकों को भी अच्यूलियन मानव व्यर्थ नहीं जाने देते थे। वे उनके छोटे छोटे उपकरण बना लेते थे। लेकिन फिर भी मुष्टिछुरा उनका प्रमुख औजार था। यह उपकरण यूरोप ग्रीनलैण्ड अमरिका कनाडा मेक्सिको पश्चिमी एशिया भारत और चीन से प्राप्त होता है। इस युग में पृथिवी पर उन मानवों का आधिपत्य था जिनके अवशेष स्वंसकोम्ब स्टीनहीम तथा फानशवाद इत्यादि स्थानों पर प्राप्त होते हैं।

चित्र १४ अश्यूलियन मुष्टिछुरा
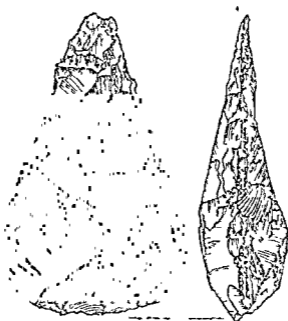
फलक उपकरण—दूसरे प्रकार के हथियार फलक या फ्लेक हथियार कहलाते हैं। इनको बनाने में क्रोड या आन्तरिक को छोड़ दिया जाता था और उसके स्थान पर उससे उतारे फलकों का प्रयोग किया जाता था। फलक हथियार भी बहुत प्रकार के होते थे। ये विशेषकर यूरोप और उत्तरी अफ्रीका में मिलते हैं (मानचित्र २)। क्योंकि फलक क्रोड से ही उतारे जाते थे इससे स्पष्ट है कि फलक हथियारों का निर्माण आन्तरिक हथियारों के साथ बहुत प्राचीनकाल में ही प्रारम्भ हो चुका होगा। विकास की दृष्टि से फलक हथियारों को निम्नलिखित संस्कृतियों में बाँटा जा सकता है —

चित्र १५ क्लैक्टोनियन फलक
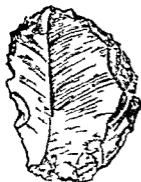
(अ) क्लैक्टोनियन संस्कृति (Clactonian Culture)—इस संस्कृति का इतिहास द्वितीय हिमयुग से प्रारम्भ होता है और द्वितीय अन्तर्हिमयुग में अश्यूलियन संस्कृति के प्रभाव तक चलता है। यद्यपि इस समय के कुछ स्थानों पर प्रारम्भिक अवस्था में केवल क्लैक्टोनियन हथियार ही मिलते हैं तथापि अश्यूलियन संस्कृति

थियन-पतजितनियन चोउ-कोऊ-तिनियन धारा जिसमे विशेषत चॉपर उपकरण बनाये जाते थे । फलक उपकरण हिम जलवायु म अधिक उपयोगी सिद्ध होते थे।

चित्र १८ ओल्डोवान-उपकरण

इसलिए यूरोप मे अन्तर्हिमयुगा म आन्तरिक उपकरणो की लोकप्रियता अधिक हो जाती थी और हिमयुगा मे फलक उपकरणो की ।

दैनिक जीवन

प्रारम्भिक पूर्व-पाषाणकालीन मानव के जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहुत कम तथ्य ज्ञात है । यह लगभग निश्चित है कि इस काल का मानव खुले आकाश के नीचे रहता था और नदियो तथा झीलो के किनारे विचरण करता था। गुफाओ से उसे कोई मोह नही था । केवल पकिंग मानव इस विषय म अपवाद मालूम देता है । सम्भवत आग से भी उसका परिचय नही था । अफ्रीका म मनुष्य द्वारा अग्नि के प्रयोग का प्राचीनतम साक्ष्य अच्यूलियन युग के अन्त का है । लेकिन पेकिंग मानव इस क्षेत्र मे भी अपवाद है । वह निश्चित रूप से अग्नि के कुछ उपयोग जानता था । अब्यूलियन मानव की आजीविका का प्रमुख स्रोत सम्भवत शिकार था । उसके मुख्य हथियार लकडी की साधारण बछियाँ थी । किसी किसी प्रदेश म बड पशुओ का शिकार करन क लिए गड्ढे भी खोद जात थ जिनम पशु गिरकर फस जात थ । इस काल के मानवो द्वारा शिकार किय गय पशुओ की अस्थियाँ इटली और स्पन मे प्रचुरता स प्राप्त होती है । इनसे ज्ञात होता है कि वे जगली वृषभ अश्व और हाथी के शिकार म विशेष रूप से रुचि लेते थ ।

५

मध्य-पूर्व-पाषाणकाल

नियण्डर्थल मानव

मध्य-पूर्व-पाषाणकाल मे यूरोप में नियण्डर्थल जाति का आधिपत्य स्थापित हो जाता है। नियण्डर्थल-मानव के अवशेष सर्वप्रथम १८४८ ई० में जिब्राल्टर की एक चट्टान के नीचे मिले। उस समय इनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। तत्पश्चात १८५६ ई० मे जर्मनी के डुसेलडोर्फ प्रदेश के नियण्डर्थल स्थान पर एक अस्थि-पिंजर के कुछ अश मिले। इस स्थान के नाम पर इन अस्थियों के मानव को नियण्डर्थल कहा गया (चित्र १६)। १६ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे यूरोप के बल्जियम, फ्रास, स्पेन, इटली, यूगोस्लाविया और क्रीमिया इत्यादि देशो से इस मानव के अनेक अस्थि पिंजर खोज निकाले गये। इनमे स्पष्ट हो गया कि नियण्डर्थल मानव का मानव सभ्यता के इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

चित्र १६ . नियण्डर्थल-मानव

नियण्डर्थल मानव की शरीर-सरचना आधुनिक 'पूर्णमानव' से बहुत कुछ मिलती जुलती होने पर भी कुछ बातों मे भिन्न थी। यह मानव कद मे छोटा—केवल ५ फुट से ५ फुट ४ इच तक—होता था। उसका सिर बड़ा, नाक चौडी परन्तु नोकीली, कन्धे चौडे और माथा पीछे की ओर ढलवा हुआ होता था।

उसका अगूठा मनुष्य के अँगूठे के समान लचीला नही होता था। वह न तो गर्दन सीधी करके खडा हो सकता था और न सत्वर गति से चल सकता था। उसका मस्तिष्क-कोष पूर्ण मानव के मस्तिष्क-कोष से कुछ बडा (१४५० घन सेन्टीमीटर) परन्तु निम्नकोटि का था। उसके मस्तिष्क की देखने और छूने से सम्बन्धित शक्तिया कुछ कमजोर थी। वह सम्भवत बोल सकता था परन्तु भाषा का विकास नही कर पाया था। यद्यपि एशले माण्टगु जैसे नृवंशशास्त्रियो ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि नियण्डथल मानव पूर्ण मानवो से मिलता-जुलता था तथापि अधिकाश विद्वान् यह विश्वास करते है कि नियण्डथलो में उपर्युक्त शारीरिक दोष थे।
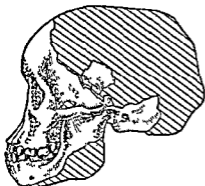
१—आस्ट्रेलोपिथकस अफ्रीकेनस् का कपाल

२—नियण्डथल मानव का कपाल

३—कार्मेल पर्वत से प्राप्त नियण्डथलसम मानव का कपाल

४—क्रोमान्या मानव का कपाल

चित्र २०

नियण्डथलों का मानव-परिवार में स्थान—नियण्डथल मानव का मानव परिवार में क्या स्थान है इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नही है। अब तक कुछ

वर्ष पूर्व तक विद्वानों की यह धारणा थी कि नियण्डर्थल जाति 'मानव' वर्ग (*Homo*) की होने पर भी 'पूर्णमानव' वर्ग (Homo Sapiens) से सम्बन्धित नहीं है। उनके अनुसार यह एक अर्द्ध-मानव जाति थी जिसको परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल के 'पूर्ण-मानवों' ने पराजित करके यूरोप पर अधिकार स्थापित किया। लेकिन हम देख चुके हैं कि अब यूरोप में ही प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल के ऐसे प्रस्तरित अवशेष स्वैन्सकोम्बे, स्टीनहीम और फोन्तेशेवाद इत्यादि स्थानों से प्राप्त हो गये हैं जिनको 'पूर्णमानवों' के अवशेष न मानने का कोई कारण नहीं है। इसलिए अब यह कह सकना लगभग असम्भव हो गया है कि 'पूर्णमानव' जाति का यूरोप में आगमन नियण्डर्थल जाति के महारक के रूप में हुआ। अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि हिमयुगों के प्रारम्भिक काल में 'पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस' मानवों से मिलते जुलते मानव यूरोप में आकर बस गये थे। इसका प्रमाण हीडलबर्ग-मानव के अवशेष हैं। इन्हीं मानवों से प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल में 'पूर्ण-मानवों' का विकास हुआ। लेकिन मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में, जब यूरोप में चौथी बार भयानक हिमपात हुआ 'पूर्णमानवों' की एक शाखा में, जिसे हम नियण्डर्थल कहते हैं, अकेले पड जाने के कारण कुछ शारीरिक परिवर्तन हो गये, जिनके कारण यह जाति 'पूर्णमानवों' से कुछ भिन्न दिखाई देने लगी। इस दृष्टि से देखने पर नियण्डर्थल जाति मूलत 'पूर्णमानव-परिवार' से सम्बन्धित मानी जाएगी।

उपकरण

मूस्टेरियन-उपकरण—नियण्डर्थल जाति के पाषाण हथियार मूस्टेरियन-संस्कृति (Mousterian Culture) के अन्तर्गत आते हैं (चित्र २१)। ये हथियार फ्रांस के
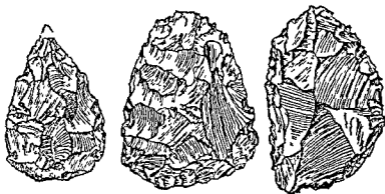
चित्र २१ · मूस्टेरियन-उपकरण

ल मूस्टियर स्थान मे प्रचुर मात्रा मे पाये गये है इसलिए इन्हें 'मूस्टेरियन' नाम दिया गया है। मूस्टेरियन हथियार फ्रान्स के अतिरिक्त यूराप के अन्य बहुत से देशा, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका मे भी मिले हैं। ये मुख्यत फलक हथियार हैं। मुष्टिछुरे का, पुराने ढग का होने के कारण, बहुत कम प्रयोग हुआ है। मूस्टेरियन हथियारो का विकास विशेषत क्लेक्टोनियन हथियारो से हुआ पर इन पर अचूलियन और लेवालुआजियन परम्पराओ का प्रभाव भी सर्वथा स्पष्ट है। ये प्राचीन फलक हथियारा से अधिक हल्के तेज और सुदर हैं। य कई शताब्दियो के अनुभवा का परिणाम मालूम होत हैं। इन उपकरणो मे पाश्व-खुरचन यन्त्र (Side Scraper), पत्थर का रन्दा, आरा, चाकू सुआ भाले की नोक,तथा बर्छी की नोक इत्यादि सम्मिलित है। नियण्डर्थल मानव अस्थियो के नैसर्गिक टुकडों को भी हथियार के रूप म प्रयुक्त करत थ । परन्तु उन्हें तराशकर 'मानव निर्मित हथियार' का रूप देना नही जानत थ।

नियण्डर्थल-सस्कृति

नियण्डर्थल युग की तिथि—इस सस्कृति का काल तृतीय अन्तर्हिमयुग के अन्तिम चरण से प्रारम्भ होता है। उस समय यूराप का जलवायु उष्ण था इसलिए उस काल के नियण्डर्थला का जीवन अचूलियना के जीवन से मिलता जुलता था। लेकिन **चतुर्थ हिमयुग में**, जब यूरोप मे भयकर शीत पड रहा था, नियण्डथला का जीवन एकदम बदल जाता है। यही काल नियण्डर्थल सस्कृति का प्रमुख काल है।

गुफाओ का प्रयोग और अग्नि पर नियन्त्रण—चतुर्थ हिमयुग के शीत से बचने के लिए नियण्डथला ने गुफाओं म रहना प्रारम्भ किया। उनकी पूर्वगामी जितनी मानव जातियो का अध्ययन हमने किया है उनमे पकिंग मानव को छोडकर अन्य किसी के गुफाओ मे रहने का प्रमाण नहीं मिलता । लेकिन नियण्डथलो ने जहाँ भी सम्भव हो सका, गुफाओ को अपना निवास स्थान बनाया। उनके पास जलपात्र नही थे इसलिये उन्होंने ऐसी गुफाओ को ही अपनाया जो झीलो और सरिताओं के पास पडती थी और जहाँ पाषाण खण्ड भी सुविधा मे मिल जात थे। गुफाओ म रहन की परम्परा परवर्ती पूर्व-पाषाणकाल म भी चलती रही (पृ० ५२), इसलिए नियण्डर्थल युग को कभी-कभी आरम्भिक गुहा-युग और परवर्ती पूर्व पाषाण काल को परवर्ती गुहा-युग भी कहा जाता है। लेकिन नियण्डर्थल गुफाओ पर अनायास ही अधिकार न कर सके। इस समय मैमथ, भालू और गैंडे जैसे भयकर पशु भी शीत से बचने के लिए गुफाओं पर अधिकार करने का प्रयास कर रहे थ। उनको गुफाओ से दूर रखने मे नियण्डर्थला को अग्नि स बहुत सहायता मिली। नियण्डर्थल निश्चित रूप से अग्नि से परिचित थे लेकिन वे स्वय आग जलाना

जानते थे अथवा नही यह कहना कठिन है। अधिकांश विद्वानो का विचार है कि वे चकमक पत्थर से आग जलाना जानते थे। अग्नि पर नियन्त्रण कर लेना नियण्डर्थलो की बहुत बडी सफलता थी। आग से जगली पशु डरते थे इसलिये गुफाओ के द्वार पर इसे प्रज्ज्वलित रखकर उन्हें दूर रखा जा सकता था। वे अपने आश्रय स्थान मे निर्भर होकर सो सकते थे। इसकी सहायता से वे चतुर्थ हिमयुग के भयकर शीत से बच सकते थे और अधेरे स्थानो को प्रकाशित कर सकते थे। अग्नि की सहायता से उनका भोजन अधिक सुस्वाद होने लगा। सैकडो पदार्थ जो पकाये बिना नही खाये जा सकते थे, अब उनके भोजन मे सम्मिलित हो गये। इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिये कि अग्नि पर ही भविष्य मे सभ्यता की प्रगति निर्भर थी। अग्नि पर नियन्त्रण किये बिना न तो मनुष्य धातुओ को पिघला सकता था और न उनसे उपकरण बना सकता था। इन तथ्यो से स्पष्ट है कि नियण्डर्थलो ने अग्नि पर नियन्त्रण स्थापित करके मानव-सभ्यता की प्रगति मे महत्त्वपूर्ण योग दिया।

भोजन और शिकार—नियण्डर्थल मानव पर्णरूपेण प्रकृति-जीवी थे। वे अभी तक कृषि से अपरिचित थे और पशुपालन करके अतिरिक्त खाद्य सामग्री, जैसे दूध और मांस इत्यादि का 'उत्पादन' करना नही जानते थ। उनका भोजन या तो जगली फल थ जिनको वे तोडकर एकत्र कर सकते थे, अथवा वे पशु थे जिनका वे अकेले या सामूहिक रूप से शिकार करते थे। विभिन्न प्रकार के जगली बेर, करोदे, शाक, फल, अण्ड, मधु केंचुएँ कीडे मकोडे तथा मढक इत्यादि उनका साधारण भोजन थे। नदियो और तालाबो से, सम्भवत हाथ से, वे मछली पकड लेते थे। समुद्र के किनारे उन्हे घोंघ और समुद्री घास खाने को मिल जाती थी। छोटी-छोटी चिडियो को सम्भवत वे पत्थर मारकर गिरा लेते थे। मासाहार के लिए वे मुख्यत छोटे-छोटे पशुओ पर दृष्टि रखते थे। उनके नरभक्षी होने के भी कुछ सकेत मिलते हैं। बडे पशुओ का शिकार वे सम्मिलित रूप से ही करते थे क्योकि उनका अकेले शिकार करने मे स्वय शिकार हो जाने का भय रहता था। यह युग रीछ, गेंड और मैमथ आदि भयकर पशुओ का था। नियण्डर्थलो के पास केवल पाषाण के हथियार थ, इसलिय सम्मिलित रूप से घेरे बिना उनका शिकार नही किया जा सकता था। जब कोई विशालकाय पशु बीमार या घायल अवस्था म मिल जाता था तो वे उसे पानी या बर्फ मे फँसाकर आसानी से मार डालते थे। मृत पशुओ के लघु अङ्गो की अस्थियाँ नियण्डथलो की गुफाओ मे प्रचुर मात्रा मे मिलती हैं, परन्तु पसली और रीढ की हड्डियाँ बहुत कम प्राप्य है। इससे ज्ञात होता है कि वे विशालकाय पशुओ के धड को वही खा लेते थे जहाँ उनका शिकार करते थे और शेष भाग को काटकर गुफाओ मे ले आते थे।

शिकार में मारे गये पशुओं से नियण्डर्थलों को माँस के साथ खाल भी मिल जाती थी। खाल के आन्तरिक भाग को वे छीलकर ठीक कर लेते थे। इसके लिए वे अपने पाषाण औजारों का प्रयोग करते थे। साफ करने के बाद उसे धूप में सुखाकर ओढ़ने, बिछाने और सम्भवतः पहिनने के काम में लाते थे।

सामाजिक जीवन—नियण्डर्थल मानव विशालकाय पशुओं का शिकार करता था, इससे स्पष्ट है कि वह समूहों में रहता होगा। अगर आधुनिक आदिम जातियों के सामाजिक संगठन के आधार पर कुछ कल्पना की जाय तो कहा जा सकता है कि प्रत्येक समूह का एक मुखिया होता था। समूह में अधिक संख्या स्त्रियों और बच्चों की होती थी। जो पुरुष मुखिया की आज्ञा नहीं मानते थे उनको समूह से निकाल दिया जाता था। समूह के पुरुष-सदस्य दिन भर भोजन जुटाते थे और रात में एक स्थान पर इकट्ठा हो जाते थे जिससे जंगली पशुओं से अपनी रक्षा कर सकें। स्त्रियाँ और बच्चे दिन भर पाषाण-खण्ड एकत्र करते थे। रात में समूह का मुखिया और अन्य पुरुष मिलकर हथियार बनाते थे और बच्चे उनके पास बैठकर यह कला सीखते थे। जब समूह का कोई लड़का व्यस्क हो जाता था तो वह मुखिया के पद को छीनने का प्रयास करता था। अगर मुखिया इस संघर्ष में जीतता था तो वह उस युवक को समूह से निकाल देता था और यदि युवक जीतता था तो वह मुखिया बन जाता था और समूह के सब सदस्यों पर उसका अधिकार हो जाता था।

मृतक-संस्कार—अपने अस्तित्व के अन्तिम चरण में नियण्डर्थलों ने अपने मृतकों को कुछ आदर और सम्मान के साथ दफनाना आरम्भ कर दिया था। वे उनको विशेष रूप से खोदी गई समाधियों में गाड़ते थे। बहुधा ये समाधियाँ रहने की गुफाओं में उस स्थान के समीप बनाई जाती थीं जहाँ वे आग जलाते थे। सम्भवतः वे इस तथ्य से परिचित थे कि जीवित शरीर में उष्णता तथा मृत शरीर में ठण्डक होती है। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला होगा कि मृत शरीर को अग्नि के समीप दफनाने से व्यक्ति पुनर्जीवित हो सकता है। वे अपने मृतकों को विशेष मुद्राओं में लिटाते थे और उनके साथ औजार और खाद्य-सामग्री रख देते थे। एक स्थान पर एक नियण्डर्थल युवक दाहिनी भुजा पर सिर रखकर सोने की मुद्रा में दफनाया गया मिला है। उसकी भुजाएँ पाषाण हथियारों के ढेर पर, जिसका तकिया सा बना है रखी हुई हैं। उसके सिर के पास एक पाषाण का कुल्हाड़ा और जानवरों की बहुत सी अस्थियाँ बिखरी हुई हैं। सम्भवतः उनका विचार था कि मरने के बाद भी व्यक्ति का अस्तित्व किसी न किसी रूप में बना रहता है और उस समय भी उसे इस जीवन के अनुसार इन सभी खाद्य-सामग्री और
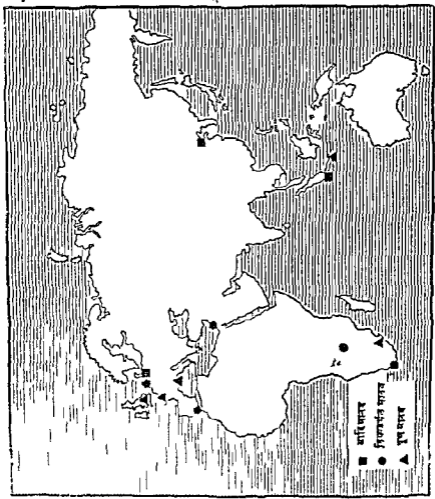
मानचित्र २

हथियारों की आवश्यकता पडती है। इससे स्पष्ट है कि बर्बर नियण्डर्थल ने मृत्यु और जीवन की समस्या पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था।

अन्त

नियण्डर्थलो का अन्त—नियण्डर्थल जाति का अन्त अब से तीस-पैंतीस सहस्र वर्ष पूर्व उस जाति ने किया जिसे नृवशशास्त्री 'पूर्णमानव' या 'मेधावी मानव' (True man अथवा Homo sapiens) कहते हैं। हम पहले ही देख चुके हैं कि सम्भवत 'पूर्णमानव' जाति का उद्भव यूरोप मे प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल मे ही हो चुका था और स्वय नियण्डर्थल जाति मूलत 'पूर्णमानव' जाति की ही एक शाखा थी। इस तथ्य के प्रकाश मे आने के पूर्व बहुत से विद्वान् यह मानते थे कि 'पूर्ण-मानव' जाति और नियण्डर्थल जाति मे शारीरिक और मानसिक भिन्नताएँ इतनी अधिक थी कि उनका एक दूसरे के सम्पर्क मे आना असम्भव था। 'पूर्ण-मानव' सम्भवत नियण्डर्थलो को अपने से भिन्न मानते थे और उनके छोटे कद, बेढगी चाल, सख्त गर्दन और कुरूप आकृति के कारण उनसे घृणा करते थे। अतएव दोनो जातियो मे रक्त मिश्रण नही हो पाया और नियण्डर्थल जाति युद्ध म पराजित हो जाने के बाद स्वय ही लुप्त हो गई। लेकिन पिछले कुछ दशकों मे पलेस्टाइन और मध्य एशिया मे ऐसे मानवो के अस्थि अवशेष प्राप्त हुये है जो निश्चित रूप से नियण्डर्थल और 'पूणमानव' जाति के बीच की अवस्था का सूचक हैं। पैलस्टाइन मे गैलिली समुद्र के पास एक गुफा मे प्राप्त कपाल और कार्मेल पर्वत की उपत्यका मे तीन गुफाओ म प्राप्त दस अस्थि पिजर निश्चित रूप से नियण्डर्थल के बजाय नियण्डर्थलसम (*Neanderthaloid*) प्रतीत होते है। इसी प्रकार १६३८ मे रूस के उजबकिस्तान गणतन्त्र मे एक नियण्डर्थलसम बालक के अवशेष प्राप्त हुये। ये अवशेष सम्मिलित रूप से 'मूल-उपशाखा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें नियण्डर्थलो और 'पूणमानवो' की शारीरिक विशेषताएँ मिले-जुले रूप मे मिलती है। इससे स्पष्ट है कि नियण्डर्थल जाति और 'पूर्णमानवो' के रक्त मिश्रण की सम्भावना को एक दम विस्मृत नही किया जा सकता।

नियण्डर्थल संस्कृति के अवशेष—तस्मानिया—नियण्डर्थल जाति का रक्त पूर्ण-मानवो मे हो या न हो, कम-से-कम उसकी सस्कृति अभी तक एकदम विलुप्त नहीं हो पायी है। आधुनिक काल म जब डच व्यापारियों ने तस्मानिया की खोज की तो उन्हें वहाँ एक ऐसी जाति मिली जिसका रहन-सहन नियण्डर्थलो के रहन-सहन से मिलता जुलता था। यह जाति शारीरिक-सरचना की दृष्टि से 'पूर्णमानव' वर्ग की थी। यह तथ्य इस बात का एक और प्रमाण है कि नियण्डर्थल जाति मूलत 'पूर्णमानव' वर्ग की सदस्य थी। केवल मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप

की विशेष परिस्थितियों के कारण उसकी शरीर-संरचना में 'दोष' उत्पन्न हो गये थे। इसके विपरीत तस्मानियन जाति की शरीर-संरचना वैसी ही बनी रही। इतना ही नहीं किसी विशेष कारणवश शेष विश्व से पृथक हो जाने और सभ्य जातियों के प्रभाव से मुक्त रहने के परिणामस्वरूप वह आधुनिक काल तक उसी आदिम अवस्था में पड़ी रही जिसमें वह मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में थी।

६

परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल

पूर्णमानव' जातिया

हम देख चुके हैं कि चतुर्थ हिमयुग म पश्चिमी यूरोप पर नियण्डथल जाति का आधिपत्य था। अब से लगभग ३५ ००० वर्ष पूर्व यह जाति सहसा विलुप्त होने लगती है और उसका स्थान ऐसी मानव जातिया लेने लगती है जिनकी शरीर सरचना पूर्णरूपेण आधुनिक मनुष्य जातियो की शरीर-सरचना के समान थी। उनके मस्तिष्क-कोष दात ठोडी गर्दन नाक पर और हाथ की बनावट ऐसी थी जैसी आधुनिक मानवो की होती है। नृवंशशास्त्री इन मानव जातियो का पूर्ण मानव या मेधावी मानव (Homo sapiens अथवा True man) वर्ग म रखते हैं। इस जाति के प्रादुर्भाव के पश्चात मानव का शारीरिक विकास रुक जाता है परन्तु सास्कृतिक विकास चलता रहता है।

इस पृष्ठ के ऊपर पूर्वी स्पेन म क्रीटास (Cretas) स्थान म स्थित एक गुफा आश्रय (Rock Shelter) से प्राप्त परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल का बारहसिंग का एक चित्र दिया गया है। चित्रकार को बारहसिंग क यथार्थ अङ्कन म पूर्ण सफलता मिली है (पृ० ८६)।

'पूर्णमानव' जाति का आदिस्थल—'पूर्णमानव' जाति परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप, उत्तरी और पूर्वी अफ्रीका तथा एशिया के विभिन्न प्रदेशों में एक साथ दिखाई देती है इसलिए यह कहना कठिन है कि इसका सर्वप्रथम आविर्भाव कहाँ हुआ। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक कुछ अंग्रेज लेखकों का यह मत था कि 'पूर्णमानव' जाति का विकास 'पिल्टडाउन मानव' से हुआ, लेकिन 'पिल्टडाउन-मानव' की यथार्थता के संदिग्ध हो जाने के बाद इस मत को मानने का प्रश्न ही नहीं उठता (पृ० ३०)। कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि जिस समय नियण्डथल जाति यूरोप में मध्य-पूर्व-पाषाणकालीन जीवन व्यतीत कर रही थी उस समय 'पूर्णमानव' जाति अपने आदि स्थल में लगभग उसी प्रकार की अवस्था से गुजर रही थी। यह आदि-स्थल सम्भवतः एशिया अथवा अफ्रीका में था जहां से यह उत्तरी अफ्रीका होते हुए यूरोप आई। सम्भवतः उस समय मेडीट्रेनियन समुद्र का अधिकांश भाग शुष्क होने के कारण उत्तरी अफ्रीका और यूरोप परस्पर जुड़े हुये थे

चित्र २३ क्रामान्यों मानव

(मानचित्र १), इसलिए उस मेडीट्रेनियन प्रदेश पार करके यूरोप आने में कोई कठिनाई नहीं हुई। कुछ अन्य विचारकों ने मेडीट्रेनियन समुद्र के उस शुष्क प्रदेश को ही, जो अब जलमग्न है, पूर्णमानवों का आदि-स्थल माना है। कुछ नृवंश शास्त्री नियण्डर्थलों के ही विकसित रूप में 'पूर्णमानव' बन जाने की सम्भावना पर बल देते हैं। लेकिन हम देख चुके हैं 'पूर्णमानव' जातियों का उदय सम्भवतः

प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल में ही हो चुका था और स्वयं नियण्डर्थल जाति भी पूर्णमानव जाति की एक शाखा थी। केवल उसकी शरीर-संरचना का कुछ विशेष परिस्थितियों में रहने के कारण भिन्न प्रकार से विकास हो गया था (पृ० ३६)। इसका एक प्रमाण स्वन्सकोम्ब, स्टीनहीम और फोन्टशेवाद स्थानों से प्राप्त होने वाले प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल के अस्थि अवशेष है (पृ० ३०)। इन अवशेषों के मानवों की शरीर-संरचना में ऐसी कोई बात नहीं मिलती जिससे उन्हें पूर्णमानव की श्रेणी में न रखा जा सके। दूसरे, सन् १९५१ ई० में सी० कून नामक विद्वान ने ईरान की हुतूगुफा से पूर्ण-मानव के कपाल प्राप्त किये। इनकी आयु ७५,००० से एक लाख वर्ष पूर्व तक मानी जाती है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि परवर्ती-पूर्व पाषाणकाल में जिस पूर्णमानव जाति का प्रभुत्व स्थापित हुआ उसका अस्तित्व पहले से ही था। इसके अतिरिक्त ईरान में एक लाख वर्ष पुराने पूर्णमानवों के अस्थि अवशेष मिलने से यह भी संकेत मिलता है कि ३५,००० वर्ष पहले यूरोप में पूर्णमानवों का आगमन सम्भवतः पश्चिमी एशिया से हुआ। इसका समर्थन फिलिस्टाइन में गैलिली समुद्र के पास और कर्मेल पर्वत की उपत्यका में मिलने वाले अस्थि अवशेषों से भी होता है (पृ० ४३) क्योंकि यह परवर्ती-पूर्व-पाषाण कालीन पूर्णमानव और नियण्डर्थल जातियों के रक्त मिश्रण का प्राचीनतम प्रमाण है।

यूरोप की पूर्णमानव जातियाँ—जिस समय पूर्णमानव जाति ने नियण्डर्थलों को पराजित करके यूरोप पर अधिकार स्थापित किया वह कई शाखाओं में विभाजित हो चुकी थी। यूरोप में इसकी **चार शाखाएं** ज्ञात हैं—

(अ) **क्रोमान्यों मानव** (Cro Magnards)—इस मानव के अवशेष १८८६ ई० में दक्षिणी फ्रांस में क्रोमान्यो गुफाओं में मिले इसलिए इसे क्रोमान्यो मानव कहते हैं। बाद में इसके बहुत से अवशेष फ्रांस के अन्य प्रदेशों, जर्मनी, स्वीट्जरलैण्ड और वेल्स से प्राप्त हुए। यह मानव ५.१० से ६.४ तक लम्बा होता था। उसका कपाल उन्नत, मुखाकृति चौड़ी तथा ठोढ़ी और नाक नोकीली होती थी (चित्र २३)।

(आ) **ग्रिमाल्डी मानव** (Gr m ldians)—इस मानव के अवशेष १९०१ में फ्रांस में मन्टनियन सागर के तट पर ग्रिमाल्डी नामक गुफाओं में मिले। यूरोप में इस अवशेष अन्य किसी स्थान से नहीं मिले हैं। ये अवशेष एक स्त्री और युवक—सम्भवतः मां और पुत्र—के हैं। स्त्री की लम्बाई ५.३ तथा बालक की ५ है। प्रो० वरनो (Verneau) के अनुसार इनके कपाल ठाडी और दांत आधुनिक नीग्रो जाति से मिलते-जुलते हैं। यद्यपि इलियट स्मिथ तथा आर्थर कीथ इत्यादि विद्वानों ने इस निष्कर्ष से असहमति प्रकट की है तथापि यह सर्वथा

सम्भव है कि ये अवशेष ऐसे व्यक्तियों के हों जो किसी दुर्घटनावश अफ्रीका से यूरोप आ गये हों।

(इ) कोंब कोपेल (Combe copello) मानव—इस मानव के अवशेष फ्रांस के दोर्दोन (Dordogne) स्थान से १९०९ ई० में प्राप्त हुये। इस जाति के मानवों का सिर गोल, नाक चौड़ी जबड़ा छोटा और ठोढ़ी विकसित होती थी परन्तु कद ओमान्यों से बहुत छोटा—कुल दो फुट ३ इंच के लगभग—होता था।

(ई) शांसलाद (Chancelade) मानव—इस जाति के मनुष्य जिनके अवशेष १८८८ में फ्रांस में प्राप्त हुये, कद में सबसे छोटे होते थे। पाँच फुट से अधिक तो इनमें कोई न था। परन्तु इनका शरीर भारी तथा खोपड़ी बड़ी होती थी। अधिकांश विद्वान् इस जाति को ग्रीनलैण्ड की आधुनिक एस्किमो जाति से मिलती-जुलती मानते हैं।

एशिया और अफ्रीका की मानव जातियाँ—यूरोप के बाहर एशिया और अफ्रीका में परवर्ती पूर्व पाषाणकाल से सम्बन्धित पुरातात्विक अन्वेषण बहुत कम हो पाये हैं इसलिये इन महाद्वीपों में 'पूर्णमानव' जाति के विकास का चित्र प्रस्तुत करना कठिन है। जहाँ तक एशिया का सम्बन्ध है हम हाल ही में अन्वेषित हूतूमानव (ईरान) का उल्लेख कर चुके हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया में जावा से प्लीस्टोसीन युग के अन्तिम चरण के स्तरों में दो उल्लेखनीय अस्थि अवशेष मिले हैं। इन अवशेषों को वादजक और सोलो मानवों के अवशेष कहा जाता है। इनकी शरीर-संरचना में कुछ नियण्डर्थलसम तत्त्व पाये जाते हैं।

अफ्रीका के मानव अवशेषों में सर्वप्रथम **रोडेशियन-मानव** के अवशेषों का उल्लेख किया जा सकता है जो १९२१ में रोडेशिया के ब्रोकनहिल नामक स्थान पर खाना में खुदाई करते समय एक गुफा के अन्तिम भाग में मिले थे। इन अवशेषों में कपाल का कुछ भाग रीढ़ की हड्डी वस्ति प्रदेश का कुछ भाग तथा टाँग की अस्थियाँ सम्मिलित हैं। प्रारम्भ में विद्वानों की यह धारणा थी यह मानव नियण्डर्थल से मिलता जुलता था परन्तु आजकल यह माना जाता है कि रोडेशियन मानव ओमान्यों के अधिक निकट था।

१९१३ ई० में ट्रान्सवाल में एक मानव की अस्थियाँ मिली। यह मानव **बोस्कोप-मानव** कहलाता है। यद्यपि ये अस्थियाँ टूटी फूटी अवस्था में मिली हैं तथापि इनसे यह सिद्ध हो जाता है कि यह मानव 'पूर्णमानव' वर्ग का था।

उपकरण

नये उपकरण—परवर्ती-पूर्व पाषाणकाल में यूरोप में जो नयी जातियाँ आईं वे नियण्डर्थलों से अधिक प्रबुद्ध थीं और उनकी सौन्दर्य-भावना समस्त पाषाण-

काल की किसी भी जाति से अधिक समुन्नत थी। इनका जीवन भी पूर्वगामी जातियों के जीवन से कहीं अधिक जटिल था, इसलिए उनको विविध प्रकार के हथियारों की आवश्यकता पड़ती थी। इन हथियारों के निर्माण के लिए वे अपनी पूर्वगामी जातियों के समान केवल पाषाण पर ही निर्भर नहीं रहते थे वरन् सींग हाथी दाँत और अस्थियों का भी प्रचुरता से प्रयोग करते थे। इन नवीन द्रव्यों के हथियारों को समुचित रूप देने के लिए उन्होंने पालिश करने की विधि का आविष्कार किया। कालान्तर में इस विधि का प्रयोग नव-पाषाणयुग में पत्थर के हथियारों को सुन्दरतर बनाने के लिए किया गया। उन्होंने पाषाण-हथियारों के बनाने की नई विधियों का भी आविष्कार किया। मध्य-पूर्व पाषाणकाल तक पाषाण हथियार मुख्यतः आन्तरिक (Core) अथवा फलक (Flake) के बनते थे। परवर्ती-पूर्व-पाषाण-कालीन जातियों ने आन्तरिक और फलक के स्थान पर ब्लेड हथियारों (Blade) को प्रधानता दी। ब्लेड' पतले समानान्तर फलक (Flake) को कहते हैं। इनका निर्माण करना अधिक सुविधाजनक था और ऐसे औजार उनके कलाकारों के लिए भी उपयोगी होते थे। ब्लेड हथियारों में सबसे प्रसिद्ध रुखानी या नक्काशी-यन्त्र (Burin या Graver) नाम का हथियार है जिसकी नोक छेनी की नोक के आकार की परन्तु बहुत छोटी होती थी।

प्रमुख संस्कृतियाँ—पुरातत्त्ववेत्ताओं ने परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन संस्कृतियों को तीन युगों में बाँटा है—आरिग्नेशियन सौल्युट्रियन और मैग्डलेनियन। यह स्मरणीय है कि इन संस्कृतियों का तत्कालीन मानव जातियों के साथ सम्बन्ध जोड़ना लगभग असम्भव है। ऐसा बहुधा देखने में आता है कि एक ही जाति दो-तीन संस्कृतियों से और एक संस्कृति कई जातियों से सम्बन्धित है। दूसरे इन संस्कृतियों का तिथिक्रम भी लगभग अज्ञात है। केवल साधारणरूप से इनका क्रम निर्धारित किया जा सकता है।

(अ) आरिग्नेशियन संस्कृति (Aurignacian Culture)—परवर्ती पूर्व-पाषाण काल की प्रथम संस्कृति फ्रांस की आरिग्नाक गुफा के नाम पर आरिग्नेशियन कहलाती है (चित्र २४)। इसको तीन उपयुगों में विभाजित किया जाता है। प्रारम्भिक आरिग्नेशियन (Upper Aurignacian) या शैतलपेरोनियन (Chatel perronian) मध्य-आरिग्नेशियन तथा उत्तर आरिग्नेशियन अथवा ग्रवेशियन (Gravetian)[1]। इस संस्कृति का उदय सम्भवतः पश्चिमी एशिया में हुआ लेकिन

१ पश्चिमी यूरोप में मध्य आरिग्नेशियन के पश्चात् आने वाली ग्रवेशियन संस्कृति शतलपेरोनियन का ही विकसित रूप थी। इसलिए पश्चिमी यूरोप में शातलपेरोनियन और ग्रवेशियन संस्कृतियों को सम्मिलित रूप से पेरिगोरडियन (Perigordian) संस्कृति भी कहते हैं।

चित्र २४ ऑरिग्नेशियन उपकरण
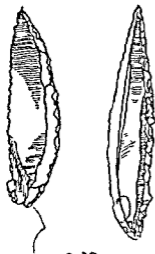
मूस्टेरियन युग के अंत में यह धीरे-धीरे पूर्व और मध्य यूरोप, इटली, दक्षिणी फ्रांस, उत्तरी स्पेन और इंग्लैण्ड में फैल गई। पेलेस्टाइन, पूर्वी अफ्रीका तथा साइबेरिया, उत्तरी चीन और दक्षिणी भारत में भी ऑरिग्नेशियन हथियारों से मिलते-जुलते हथियार प्राप्त होते हैं। इनमें अस्थि के पॉलिशदार पिन, टेकुए (Awls) और बर्छी के सिरे, आन्तरिक के रन्दे (Core end scrapers) और ब्लेड के सुंदर चाकू इत्यादि सम्मिलित हैं।

(आ) सौल्युट्रियन संस्कृति (Solutrean Culture)—इस काल के ब्लेड उपकरण, जो पूर्वी स्पेन से काले सागर तक मिलते हैं अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध हैं (चित्र २५,१-४)। यद्यपि ये बिना पॉलिश किये बनाये गये हैं तथापि

चित्र २५ सौल्युट्रियन उपकरण

...न कुछ पाषाद के उत्तर के समान पतन और धारदार हैं। सोल्युट्रियन युग के विशेष औजार लॉरेल (Laur l) और विलो (Willow) पत्तियों के आकार के बर्छी के सिरे थे (चित्र २/ १)। वे हिरण के सींग का टकुआ तथा भाला और हड्डी की सुई बनाने म भी निपुण थ।

(ई) मैग्डलेनियन संस्कृति (Mogd..lenian Culture)—फ्रास के ल-मेग्दानें स्थान के नाम पर यह संस्कृति मग्डलनियन-संस्कृति कहलाती है। यह समस्त पूर्व पाषाण-युग की सर्वोत्तम संस्कृति है। इसमे पाषाण उपकरण क्रमश छोटे बनने लगते (चित्र २६ /) है। ये अधिकांश ब्लेड से बनाये गए हैं परन्तु सींग हाथीदांत और हड्डी का भी प्रचुरता म प्रयोग हुआ है। इनमें हड्डियों के हार्पून (ह्वेल मछली पकडने का भाला जिसमें रस्सी बंधी रहती थी (चित्र २६ २) सींग का भाला (चित्र २६ ४) और सुई इत्यादि उल्लेखनीय हैं। कुछ अस्थि-सुई तो बहुत ही सुन्दर है (चित्र २६ ३)। कुछ विद्वानों का तो यहा तक कहना है कि ऐतिहासिक युग म १४ वी १५ वीं शताब्दी तक भी ऐसी सुन्दर सुइयां नहीं मिलती। इस काल के हथियारों पर बहुधा ऐसी आकृतियां खुदी हुई मिलती हैं जो कलात्मक दृष्टि से बहुत ही उच्चकोटि की है (चित्र २६ १)। मैग्डलेनियनों ने एक ऐसा यन्त्र भी बनाया जिससे बर्छी को अधिक दूर फेंका जा सकता था और लक्ष्य को अधिक सफलता से भेदा जा सकता था।

चित्र २६ मैग्डलनियन उपकरण

उपर्युक्त तीनों संस्कृतियाँ मुख्यत यूरोप और एशिया में पाई जाती हैं। इनकी समकालीन अफ्रीकी संस्कृतियाँ अतेरियन (Aterian) और केप्सियन (Capsian) हैं।

अतेरियन-संस्कृति म जो उत्तरी अफ्रीका म मिलती है मूस्टेरियन परम्परा के पाषाणोपकरण मिलते हैं। इस संस्कृति के निर्माता दोनों ओर धारवाले बाण के सिरो का निर्माण करना जानते थ (चित्र २५ ५) इसलिए उनको धनुष-बाण के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। धनुष-बाण मानव द्वारा निर्मित प्रथम मशीन है जिसकी सहायता से हाथों की शक्ति को एक बिन्दु पर केंद्रित करके दूरस्थ लक्ष्य का भेदा जा सकता है। कप्सियन (Capsian Culture) यूरेशिया की उपर्युक्त तीनों संस्कृतियों के समान ब्लेड संस्कृति है। इसका विस्तार दक्षिणी स्पेन,

से रंगते होंगे। आजकल भी बहुत सी आदिम जातियों में शरीर को रंगने की प्रथा प्रचलित है।

स्थापत्य—परवर्ती-पूर्व पाषाणकालीन मानवों का सौन्दर्य प्रेम और रंगों के प्रति आकर्षण उनके स्थापत्य और चित्रकला से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है। अन्य बातों में जंगली होते हुए भी उन्होंने कला के क्षेत्र में जो कौशल प्रकट किया है वह आश्चर्यजनक है। कला के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने न केवल भित्ति-चित्र बनाये वरन् अस्थियों और सींगों से निर्मित औजारों और हथियारों पर नक्काशी करके सुन्दर आकृतियाँ (चित्र २६, १) और हाथीदाँत तथा मिट्टी की मूर्तियाँ भी बनाईं। वे बहुधा अपने अस्थि निर्मित औजारों के हत्थे या किसी अन्य अंश पर पशु की आकृति खोद देते थे और अस्थियों के समतल टुकड़ों को पशुओं की आकृतियों में काट देते थे। अस्थियों के गोल डण्डों पर नक्काशी करके सुन्दर डिजाइन भी बनाये जाते थे। इनका उपयोग सम्भवतः चर्म-वस्त्रों पर छपाई करने में किया जाता था। पाषाण-खण्डों पर नीची-रिलीफ (Low relief) में बनाई गई आकृतियाँ भी प्राप्त होती हैं।

ऑरिन्येशियन युग की हाथीदाँत, पाषाण और मिट्टी तथा अस्थियों के मिले-जुले चूर्ण की लघु मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये मूर्तियाँ मिस्र, क्रीट, ऑस्ट्रिया, इटली, फ्रांस और स्पेन से प्राप्त होती हैं। कुछ नारी-मूर्तियों में, जिनको पुरातत्त्वशास्त्री 'रति' या 'वीनस'(Venus) की मूर्तियाँ कहते हैं, सिर बहुत छोटे दिखाये गये हैं। बालों के स्थान पर कुछ लकीरें खींच दी गई हैं परन्तु पेट, नितम्ब और स्तनों को अपेक्षाकृत बड़ा दिखाया गया है। ऐसा लगता है मानो उन्होंने गर्भवती स्त्रियों की मूर्तियाँ बनाने का प्रयास किया है। (चित्र २७) ये मूर्तियाँ मातृ शक्ति से किसी रूप से सम्बन्धित हैं (पृ० ५८) परन्तु कला की दृष्टि से सुन्दर नहीं हैं। बाद की कुछ मूर्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक मनोहर मालूम होती हैं। एक हाथीदाँत की मूर्ति में (चित्र ३१ पृ० ६०) एक लड़की के मुँह का चित्रण करने में कलाकार को अच्छी सफलता मिली है।

चित्र २७ ऑरिन्येशियन युगीन नारी-मूर्ति

प्रारम्भिक चित्रकला—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्रकला के विकास की अमिट परम्परा का विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। उनके प्रारम्भिक

चित्र आजकल के बाल-चित्रों के समान लगते है। इनमे बहुधा चतुष्पद पशुओं के केवल दो पैर—एक अगला एक पिछला—दिखाये गये हैं। ऐसा लगता है मानो पशुओं की छायाओं को छोटा करके उनके चारो ओर रखाएँ खीच दी गई है (चित्र २८)। यह युग विश्व इतिहास मे चित्रकला का उपकाल था। इसलिये वे चित्रकला की मूल समस्या को हल करने मे असफल रहे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। किसी वस्तु की आकृति बनाते समय हम उसकी लम्बाई,चौडाई और मोटाई दिखानी होती है। पाषाण और मिट्टी इत्यादि मे य तीनो बातें होती हैं अत इनसे मूर्तियाँ बनाना आसान होता है। लेकिन कागज या दीवार पर चित्र बनाते समय कलाकार के पास केवल लम्बाई और चौडाई होती है, मोटाई नही। इसलिये इन पर ज्योमितिक चित्र तो आसानी से बनाये जा सकते हैं (जिनम केवल लम्बाई और चौडाई दिखानी होती है) परन्तु पशु या मानव की आकृति बनाने म कठिनाई होती है क्योकि कागज मे मोटाई न होने पर भी मोटाई का भाव देना होता है। आजकल यह बात हमे बहुत आसान लगती है परन्तु परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव के लिए यह अत्यन्त कठिन कार्य था। उसे इस समस्या का हल स्वय खोजना पडा था। इस आविष्कार का महत्त्व केवल कला के क्षेत्र मे ही नही वरन विज्ञान और साहित्य के लिए भी है, क्योकि लिपि का विकास, जिस पर हमारा सारा ज्ञान विज्ञान निर्भर है चित्रकला के जन्म के बिना असम्भव था।
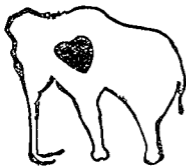
चित्र २८ आरिन्यशियन युगीन हस्ती चित्र

मैग्डेलेनियन चित्रकला—एक बार चित्रकला सम्बन्धी कठिनाइयो पर विजय पा लेने के बाद प्रगति सहज हो गई। धीरे धीर उनकी तकनीक सुधरती गई और कलाकृतियो का सौन्दर्य बढता गया। मैग्डलेनियन युग तक पहुँचते-पहुँचते उनके चित्र तकनीक और सौन्दर्य दोनो की दृष्टि से इतने उत्कृष्ट हो जाते हैं कि आधुनिक कलाकारो के लिए भी उनका निर्माता होना गौरव का कारण हो सकता है। उनकी चित्रकला के सर्वोत्तम नमूने १८७९ ई० म उत्तरी स्पन मे अल्तमीरा स्थान की प्रागैतिहासिक गुफाओ की छतो और दीवारो पर प्राप्त हुये हैं (प्लेट १)। इनमे चार रगो से बनाया गया जगली भैंसे का एक चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह मैग्डलेनियन युग की ही नहीं समस्त प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला का सर्वोत्तम नमूना है। कुछ चित्र एसे है जिन्हें सकेत चित्र (Suggestion-pictures) कहा जा सकता है (चित्र ८, पृ०२३)। एक चित्र म रैनडियरो के झुण्ड का अकन है। इसम पीछे एक और आग तीन रैनडियरो की आकृतियाँ बनाई

गई हैं, शेष को रेखाओं द्वारा स्पष्ट मात्र कर दिया गया है। इस प्रयास में कलाकार को पूर्ण सफलता मिली है। उत्तरी स्पेन के अतिरिक्त पूर्वी स्पेन से भी कुछ सुन्दर चित्र प्राप्त हुए हैं (चित्र २२ पृ०२३)। इनमें कुछ में शिकार के दृश्य उत्कीर्ण किये गये हैं। मानव-आकृतियों का अङ्कन इस प्रदेश के चित्रों की विशेषता है (चित्र ३०)।

चित्रों को बनाने में वे नैसर्गिक रंगों का प्रयोग करते थे। काला लाल पीला और सफेद रंगों का विशेषरूप से प्रयोग किया गया है। रंगों का चूर्ण बनाकर उसमें चर्बी मिला दी जाती थी। उनके द्वारा प्रयुक्त रंग अभी तक यथावत मिलते हैं। ब्रुश का प्रयोग वे करते थे या नहीं कहना कठिन है। यह सर्वथा सम्भव है कि वे इसका प्रयोग जानते हों क्योंकि ब्रुश बनाने के लिए उन्हें बाल पर्याप्त मात्रा में सुलभ थे।

परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्रकला का हेतु—इन चित्रों को बनाने में तत्कालीन कलाकारों का क्या उद्देश्य था इस विषय में विद्वानों ने बहुत से अनुमान लगाये हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये चित्र उनकी विशुद्ध कलात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हैं। कुछ अन्य विद्वान यह विश्वास करते हैं कि पाषाणकालीन कलाकारों का उद्देश्य अपने हथियारों और रहने की गुफाओं को सज्जित करना मात्र था। परन्तु कुछ तथ्य ऐसे हैं जिनके कारण इन मतों को स्वीकार करना कठिन हो जाता है। एक तो ये चित्र बहुधा ऐसे स्थानों से प्राप्त होते हैं जहां दिन में भी घोर अंधकार रहता था और आजकल भी प्रकाश का प्रबंध करने में कठिनाई होती है। तत्कालीन कलाकार को पत्थर के प्यालों (चित्र २९) या पशुओं के कपाल में चर्बी जलाकर इन अंधेरी गुफाओं को प्रकाशित करना पड़ता होगा। अगर कलाकार का उद्देश्य अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्त करना मात्र होता तो वह ऐसे दुर्गम और अंधकारपूर्ण गुहा-गह्वरों में जाने के बजाय द्वार के पास सुप्रकाशित भित्तियों पर चित्र बनाता। दूसरे कुछ चित्र ऐसे स्थानों पर बनाये गये हैं जहाँ कलाकार को बड़ी कष्ट
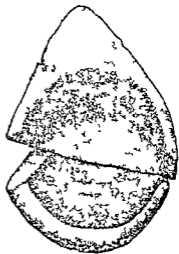
चित्र २९ पूर्व-पाषाणकालीन पत्थर का प्याला

कर मुद्रा में बैठना पड़ा होगा। कहीं उसने सीधे खड़े होकर वहां उन्हें बनाकर और

वहीं अपने साथी के कन्धे पर बैठकर चित्र बनाये होंगे। स्पष्ट है कि गुफाओं को सजाने अथवा अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिये इतने कष्ट उठाने की आवश्यकता न थी। तीसरे, बहुधा देखने में आता है कि भित्तियों पर पर्याप्त स्थान सुलभ होने पर भी पुराने चित्रों के ऊपर नवीन चित्र बना दिये गये हैं। जहाँ लगभग एक से और समकालीन चित्रों के ऊपर नवीन चित्र बना दिये गये हैं, वहाँ यह बात और भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कलाकार का उद्देश्य अपने 'घर' की सजावट करना या विशुद्ध कलानुभूतियों को अभिव्यक्त करना नहीं था।

चित्र ३० पूर्वी स्पेन की चित्रकला

मेंजर, रिनाख तथा बर्किट इत्यादि विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि ये चित्र उनकी धार्मिक विचारधारा तथा खाद्य समस्या से सम्बन्धित है। यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इन चित्रों में अधिकांशतः रैनडियर, मैमथ, भालू, भैंसे और घोड़े इत्यादि पशुओं का चित्रण है। इन पशुओं का उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान था। इनसे उन्हें न केवल खाने के लिए मांस मिलता था वरन् हथियार बनाने के

लिए सींग, हाथीदाँत और अस्थियाँ तथा तम्बू और वस्त्र बनाने के लिए खाल भी मिलती थी। दूसरे, कुछ चित्रों में शिकार का दृश्य अंकित किया गया है (चित्र ३०)। किसी किसी पशु के शरीर में भाला घुसा हुआ दिखाया गया है। सम्भवतः उनका विचार था कि किसी पशु का शिकार करने के पहले यदि उसकी आकृति का शिकार कर लिया जाय तो वास्तविक शिकार में निश्चित रूप से सफलता मिलती है, क्योंकि उस पशु की आत्मा चित्र में पहले ही बन्दी बना ली जाती है। इस विचारधारा को मानवशास्त्री सादृश्यमूलक (Sympathetic magic) कहते हैं। किसी बड़े पशु का शिकार करने के पहले चित्रकार उस पशु की आकृति बनाते होंगे और उसे अपने साथी शिकारियों को दिखाते होंगे। इससे शिकारियों में साहस और आत्मविश्वास आता होगा। आदिम जातियों के लिए यह प्रक्रिया जादू से कम नहीं थी।

धार्मिक विश्वास

उनकी चित्रकला के सम्बन्ध में यदि उपर्युक्त अनुमान सही है तो मानना पड़ेगा कि वह स्थान जहाँ उनके चित्रकार चित्र बनाते थे, एक प्रकार के 'मन्दिर' थे। इन मन्दिरों में 'चित्रों का दर्शन' करना शुभ माना जाता था। इस दृष्टि से देखने पर इन चित्र बनाने वाले कलाकारों को मन्दिरों का पुजारी कहा जा सकता है। उन्हीं के हाथ में वह जादू था जिसके द्वारा वे पशुओं की आत्मा पकड़कर अपने समूह के लिए खाद्य सामग्री सुलभ करते थे। स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्तियों का समूह में अत्यधिक प्रभाव रहता होगा। उनको परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव के धार्मिक विश्वासों का संरक्षक कहा जा सकता है। उनके द्वारा निर्मित नारी-मूर्तियाँ (चित्र २७, पृ० ५४) मातृ शक्ति के किसी रूप की उपासना से सम्बन्धित हो सकती हैं। हथियारों पर आकृतियाँ खोदने का अर्थ उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाना होगा। आभूषण प्रतीत होने वाली लघु मूर्तियाँ किसी प्रकार के तावीज हो सकती हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी कलाकृतियों और चित्रों के पीछे धार्मिक भावना निहित हो। इनमें कुछ के पीछे विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति का प्रयास भी हो सकता है।

परलोक के विषय में उनके विचार नियण्डर्थल युग से अधिक विकसित हो गये थे, क्योंकि वे न केवल अपने मुर्दों को दफनाते थे वरन् उनके साथ आभूषण, हथियार और खाद्य-पदार्थ भी रख देते थे। मृतकों के शरीर को वे लाल रंग से रंगते थे। लाल रंग रक्त का प्रतीक है। सम्भवतः उनकी यह धारणा थी कि मृत शरीर को लाल रंग में रंग देने पर जीवन की लालिमा पुनः लौट आती है।

ज्ञान-विज्ञान

परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानवों ने अप्रत्यक्षरूप से बहुत सा ज्ञान अर्जित किया और भावी ज्ञान विज्ञान की नींव डाली। उदाहरणार्थ पशुओं के चित्र बनाने के लिए उन्होंने उनकी शरीर-संरचना का गहन अध्ययन किया। वे इस दिशा में कितनी प्रगति कर चुके थे यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उनके चित्रों में एक ही प्रकार के प्राणी —जैसे मछली—की विभिन्न जातियों को पहिचानना सम्भव है। वे शरीर में हृदय के महत्त्व को जानते थे। एक चित्र में हाथी का हृदय बिलकुल ठीक स्थान पर बनाया गया है (चित्र २८, पृ० ५५) दूसरे, उन्होंने खाद्याखाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में निरीक्षणों के ज्ञान को बढ़ाया। कौन पदार्थ खाने योग्य है, कौन पदार्थ विषाक्त है, खाद्य-पदार्थ कहाँ मिलते हैं, किस ऋतु में प्राप्त होते हैं तथा किस पशु को कहाँ और कब पाया जा सकता है—ये सब बातें उनका ज्ञान विज्ञान थी। इन्हीं से कालान्तर में वनस्पति शास्त्र, प्राणी-शास्त्र और ऋतुशास्त्र इत्यादि विशिष्ट विद्याओं का जन्म हुआ।

पूर्व-पाषाणकालीन मानव की उपलब्धियाँ

पूर्व-पाषाणकाल मनुष्य की कहानी का वह लम्बा युग है जिसमें वह अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करके अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास कर रहा था। आर्थिक दृष्टि से वह प्रकृतिजीवी था। उसके हथियार पाषाण, अस्थि हाथीदाँत और सींग के होते थे और उसकी उदरपूर्ति केवल जंगली कन्दमूल, फल और शिकार से होती थी। इन कठिनाइयों के कारण प्रगति बहुत धीमी थी, फिर भी प्रगति हुई, इसमें सन्देह नहीं। मनुष्य के हथियार प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पाषाण और सींग इत्यादि के बनते रहे परन्तु उनके प्रकार, उपयोगिता और सौन्दर्य में वृद्धि होती गई। दूसरे, मनुष्य ने इस युग में अग्नि पर नियन्त्रण स्थापित किया, जिसके कारण न केवल उसका भोजन अधिक स्वादिष्ट हो गया वरन उसे शीत और अंधकार से भी मुक्ति मिली और भविष्य में धातुओं से उपकरण बनाने का मार्ग खुला। यह ठीक है कि वह नितान्त प्रकृतिजीवी रहा परन्तु इसमें कालान्तर में उसे लाभ ही हुआ। प्रकृति पर अवलम्बित रहने के कारण उसके लिए प्रकृति का अध्ययन करना आवश्यक हो गया। अब वह यह जान गया कि कौन पशु और वनस्पति कब और कहाँ मिलती है और उनका वह किस प्रकार उपयोग कर सकता है। इसे परवर्ती युगों के ज्ञान विज्ञान का बीज कहा जा सकता है। पूर्व पाषाणकालीन मानव को सबसे अधिक सफलता कला के क्षेत्र में मिली। यह निश्चित है कि आजकल एक सहस्र व्यक्तियों में एक भी ऐसा नहीं मिलेगा जो चितेरा का थोड़ा बहुत प्रशिक्षण पाये बिना ऐसे चित्र बना दे जैसे मैग्डेले-

यनों ने बनाये । लेकिन इन सब उपलब्धियों के बावजूद पूर्व-पाषाणकालीन
ानव आर्थिक क्षेत्र में नितान्त असफल रहा । अतः एक सीमा तक पहुँचने के
श्चात् उसकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया।
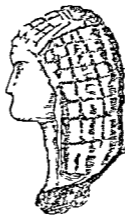
सामने से पार्श्व से

ऊपर दिया गया चित्र मैग्डलेनियन युग के एक कलाकार द्वारा बनाई गई
नवीदोन की एक मूर्ति की अनुकृति है। इसमें कलाकार ने जूड़े के अंकन में
विशेषरूप से सफलता प्राप्त की है। तुलना कीजिये ऑरिग्नेशियन युग की 'वीनस'
अथवा 'रति' की आकृति से (चित्र २७)।
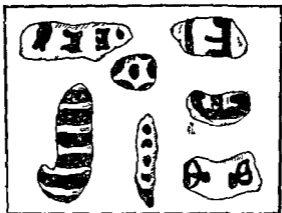
७

मध्य-पाषाणकाल

'But thinks admitted to that equal sky
His faithful dog shall bear him company.'

—*Pope Essay on Man*

सक्रान्ति काल

पूर्व-पाषाणकाल में विभिन्न प्रकारों के हथियारों और औजारों के अस्तित्व तथा कला की अप्रतिम प्रगति होने के बावजूद मनुष्य को आर्थिक क्षेत्र में अधिक सफलता नहीं मिली। यद्यपि मग्डलेनियन-युग में मैमथों, रेनडियरों, जंगली भैंसों और घोड़ों का सामूहिक रूप से शिकार होने के कारण खाद्य समस्या किसी सीमा तक सुलझ गई और मनुष्य को इतना अवसर मिलने लगा कि वह कला के क्षेत्र में कुछ कौशल दिखा सके, तथापि पूर्व-पाषाणकाल के अन्त तक वह पूर्णतः प्रकृति-जीवी बना रहा। वह यह नहीं जान पाया कि वह किस प्रकार कृषि और पशु-पालन के द्वारा प्रकृति को अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य कर सकता है। यह दोनों आविष्कार मनुष्य ने नव-पाषाणकाल (Neolithic Age) में किये।

ऊपर दिये गये चित्र में मध्य-पाषाणयुग के प्रस्तर-खण्डों पर बने डिजायन दिखाये गये हैं। सम्भवतः ये किसी प्रकार के संकेत-चिह्न हैं जिनका अर्थ समझना असम्भव है। तुलना कीजिये मग्डलेनियन युगीन चित्रकला से (चित्र २२ पृ० ४६, चि० २८ पृ० ५५ चि० ३० पृ० ५७ प्लेट १)।

नव-पाषाणकाल विश्व के बहुत से प्रदेशों मे पूर्व पाषाणकाल के एकदम बाद प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु यूरोप और कुछ अन्य प्रदेशो मे मानव सभ्यता पूर्व-पाषाणकाल के बाद एक सक्रान्ति-काल से गुजरती है जिसे पुरातत्त्ववेत्ता 'मध्य-पाषाणकाल' (Mesolithic Age या Middle Stone Age) कहते हैं।

भौगोलिक परिवर्तन—भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से मध्य-पाषाणकाल प्लीस्टोसीन और होलोसीन युगो का सक्रान्ति काल है। मैग्डेलेनियन-युग के बाद यूरोप और एशिया के भौगोलिक स्वरूप मे उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं। भूमध्यसागर, जो अब तक दो विशाल झीलों के रूप मे था, भर जाता है और अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करता है। एशिया के मध्य मे जो विशाल समुद्र था, वह शुष्क होने लगता है और धीरे-धीरे आजकल के केस्पियन सागर, काला सागर और मध्य एशिया की झीलो के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। स्पेन अफ्रीका से, इगलैण्ड यूरोप से और अरब प्रायद्वीप मिश्र से पृथक हो जाता है। भारत का आधुनिक स्वरूप भी इसी समय प्रकट होता है। इन महाद्वीपो के जलवायु मे भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। पश्चिमी एशिया और उत्तर-पश्चिमी भारत इत्यादि, जो अब-तक घास के हरे-भरे मैदान थे, अधिक शुष्क होने लगते हैं और यहाँ रेगिस्तानी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। यूरोप मे हिमयुगीन शीत का सर्वथा अन्त हो जाता है और उत्तरी यूरोप वनों से ढक जाता है। ठण्डी जलवायु मे रहने वाले पूर्व-पाषाणकालीन पशु जैसे मैमथ रैनडियर शनै-शनै उत्तर की ओर खिसक जाते है। इनका स्थान दक्षिण के वे पशु ले लेते है जो अपेक्षाकृत उष्ण जलवायु मे रहने के अभ्यस्त थे। नये पशुओ के साथ पूर्ण-मानव जाति की नई शाखाएँ यूरोप मे पदार्पण करती हैं और क्रोमान्यो तथा उनसे सम्बन्धित जातियो को पराजित करके अपना अधिकार स्थापित कर लेती है। इन परिवर्तनो का मनुष्य के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडा। उसे स्वय को नये परिवर्तनो के अनुकूल बनाना पडा। इसलिये तात्कालिक दृष्टि से देखने पर इस काल की सभ्यता पूर्व-पाषाणकाल की मैग्डेलेनियन सस्कृति से हीनतर दिखाई देती है। परन्तु दीर्घकालिक विकास की दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ह्रास म ही भावी उन्नति का बीज छिपा हुआ था। इससे मनुष्य को उन आविष्कारो के लिए तैयारी करने का अवसर मिल गया जो नव पाषाणकाल म उनके जीवन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाले थे।

मध्य-पाषाणकालीन मानव का जीवन

भोजन और शिकार—मैग्डलेनियन मानवो के समान मध्य-पाषाणकालीन मानव का प्रमुख भोज्य-पदार्थ शिकार से प्राप्त मास था। परन्तु इस काल मे शिकार किये जाने वाले पशु और शिकार की प्रणाली मे पूर्णरूपेण परिवर्तन हो

जाता है। मैग्डेलेनियन युग में मनुष्य मैमथ, जंगली भैंसे तथा घोड़े इत्यादि का शिकार करता था। इनका शिकार करने के लिए उसे सामूहिक रूप में प्रयत्न करना पड़ता था। अतः इस युग में मनुष्य बड़े-बड़े समूहों में रहता था। लेकिन मध्य-पाषाणकाल में इन विशालकाय पशुओं की संख्या कम होती जा रही थी, इसलिये मनुष्य को बड़े-बड़े समूहों में रहने की आवश्यकता न रही। इस काल के पशुओं, जैसे हिरण, खरगोश, और बारहसिंगा इत्यादि का शिकार अकेले या छोटे-छोटे समूहों में करना आसान पड़ता था। इसलिये मध्य-पाषाणयुग में हमें मनुष्य यूरोप के विभिन्न भागों में छोटे-छोटे समूहों में बिखरा दिखाई देता है। इस काल में मनुष्य ने एक नयी बात अवश्य सीखी और वह थी शिकार करने में कुत्ते का सहयोग प्राप्त करना। कुत्ता मनुष्य का सबसे पुराना पशु मित्र है। यह पहला पशु है जिसे मनुष्य पालतू बनाने में समर्थ होता है। इसकी सहायता से मनुष्य हिरण और खरगोश इत्यादि का शिकार आसानी से कर सकता था। इस सहायता के बदले में कुत्ते को मृत पशुओं के मांस का एक भाग मिल जाता था। कालान्तर में मनुष्य ने यह पाया कि कुत्ते से अन्य बहुत से कार्य लिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक पशु को पालतू बना लेने से उन्हें अन्य पशुओं को पालतू बनाने का भाव और प्रेरणा मिली।

कला—मध्य-पाषाणकालीन मानव मैग्डेलेनियनों के समान गुफाओं में अथवा तम्बुओं में रहता था परन्तु वह उनको चित्रों से सजाने में रुचि नहीं रखता था। यह ठीक है कि उसको रंगों से प्रेम था, परन्तु उसने इसकी अभिव्यक्ति गुफाओं की भित्तियों और छतों को पशुओं की आकृतियों से सज्जित करके नहीं वरन् छोटे-छोटे गोल पाषाण-खण्डों पर सरल चिह्न बनाकर की है (चित्र ३२, पृ० ६१)। सम्भवतः इनका निर्माण संकेत चित्रों के रूप में हुआ है। इस समय तक कुछ वस्तुओं के चिह्न निश्चित रूप से रूढ़ हो चुके थे। कलाकार वस्तु का चित्र बनाये बिना कुछ रेखाओं से उसका भाव प्रकट कर सकता था। इन चित्रों को देखने वाले व्यक्ति के इन रेखाओं के अर्थों से परिचित होने पर निश्चितरूप से इस विधि के द्वारा श्रम और समय बचाया जा सकता था। कम-से-कम धार्मिक और व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से ये संकेत-चित्र वही काम दे सकते थे जो पूर्ण चित्र देते थे। यह विधि सौन्दर्य प्रेम के ह्रास परन्तु बौद्धिक प्रगति की सूचक है। इसमें मनुष्य द्वारा भविष्य में किये जाने वाले एक महान आविष्कार—लिपि—का बीज निहित है।

लघुपाषाणोपकरण और संस्कृतियाँ—परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल में ही हमें हथियारों और औज़ारों को छोटा करने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। फ्रांस और इटली में ग्रवेशियन युग, पूर्वी स्पेन में सौल्युट्रियन युग तथा उत्तरी अफ्रीका

म कप्सियन युग के ऐसे बहुत से उपकरण मिलते हैं जिनका आकार बहुत छोटा है और आकृति ज्योमितिक है। ऐसे उपकरणों को 'लघुपाषाणोपकरण' या माइ-

चित्र ३३ लघुपाषाणोपकरण

क्रोलिथ (Microliths) कहते हैं।(चित्र ३३) मध्य पाषाणकाल की लगभग सभी संस्कृतियों में ज्योमितिक आकार के सुडौल परन्तु तीक्ष्ण माइक्रोलिथों का निर्माण होता है। इनको लकड़ी या हड्डी के डण्डों में लगाकर भाँति भाँति के दाँतेदार उपकरण बनाये जाते थे। यह परम्परा बहुत से स्थानों पर मध्य-पाषाणकाल के पश्चात् नवपाषाण और कांस्यकाल में भी चलती रहती है।

(अ) अजीलियन (Azilian) संस्कृति—यूरोप की प्राचीनतम मध्य-पाषाण कालीन संस्कृति फ्रांस के ल मास दाजील (Le Mas d'Azil) स्थान के नाम पर अजीलियन-संस्कृति कहलाती है। इसका विकास उन प्रदेशों में हुआ जहाँ पहले मग्डलेनियन संस्कृति फलफूल रही थी। इस संस्कृति के निर्माता गुफाओं में रहते थे। ये अपने चित्रित प्रस्तर-खण्डों और लघु हापूनों के लिए जिनमें नीचे एक छेद होता था प्रसिद्ध हैं। इनके पाषाण हथियार मग्डलेनियन प्रकार के खुरचन यन्त्र और नक्काशी-यन्त्र (Burin) हैं परन्तु इनका आकार बहुत छोटा हो गया है।

(आ) तार्देनुआजियन (Tardenoisian) संस्कृति—प्रारम्भ में यह अजीलियन संस्कृति से सम्बन्धित प्रतीत होती है। इसके निर्माता ज्योमितिक आकार के लघु उपकरणों (Microliths) को लकड़ी के डण्डों में लगाकर हापून बनाते थे। उनके माइक्रोब्यूरान (Microburin) भी प्रसिद्ध हैं परन्तु अन्य उपकरण बहुत कम मिलते हैं।

(इ) अस्टूरियन (Asturian) संस्कृति—पश्चिमी स्पेन और पुर्तगाल के समुद्रतटीय प्रदेशों में मिलती है। इसके निर्माता अपनी उदरपूर्ति के

लिए पेलमिन पर निर्भर रहते थे। इनके पाषाण उपकरण बहुत आदिम कोटि के—इयोलिथा से मिलने-जुलते—थे।

(ई) किचेन मिडेन (Kitchen Midden) संस्कृति—पिछले सौ वर्षों मे फ्रास, सार्डीनिया, पुर्तगाल, ब्राजील, जापान, मचूरिया और डेनमार्क मे प्रागैतिहासिक काल के अवशेषो के ऐसे ढेर मिले हैं जिनमें समुद्री प्राणियो, जैसे मछलियाँ, कछुए, घोंघे इत्यादि के खोल, थलचर पशुओ की अस्थियाँ तथा हड्डी, सीग और पाषाण के औजार और हथियार सम्मिलित हैं। डेनमार्क में इन्हें किचेन मिडेन (Kitchen Midden) कहते हैं। इनका समय अब से लगभग १०,००० वर्ष पूर्व माना जाता है।

(उ) मैग्लेमोजियन (Maglemosian) संस्कृति—परवर्ती मध्य-पाषाणयुग मे दक्षिणी स्वीडन और नार्वे इत्यादि देशो मे भी शीत कम हो जाने पर, पूर्व-पाषाण-*कालीन जातियो के वशज आकर रहने लगे। उनके प्रारम्भिक हथियार औरि-*न्यशियन और मैग्डलेनियन हथियारो के समान है परन्तु कुछ बाद म एक विशिष्ट सस्कृति का विकास हो जाता है जिसे *मैग्लेमोजियन-सस्कृति* (*Maglemosian-Culture*) कहा जाता है। इस सस्कृति के निर्माता अस्थियो से मछली पकडने के काँटे और हार्पून बनाते थ। वे रैनडियर के सीग मे बीच मे छेद करके और हत्था लगाकर कुल्हाडी बनाते थ और हड्डियो के उपकरणो पर ज्योमितिक चित्र भी बनाना जानते थे।

मध्य पाषाणकाल की तिथि—पूर्व-पाषाणकाल की अपेक्षा मध्य-पाषाणकाल का तिथिक्रम निश्चित करना अधिक कठिन है। एक तो पूर्व पाषाणकाल बहुत दीर्घ समय तक चला। दूसरे उस युग मे मानव प्रगति की प्रक्रिया बहुत धीमी रही। उस समय विभिन्न प्रदेशो की सस्कृतियो मे अधिक अन्तर नहीं था। परन्तु मध्य-पाषाणकाल म प्रगति की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है और विभिन्न प्रदेशो म सास्कृतिक भेद बढ जाता है। तीसरे किसी प्रदेश म पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था का शीघ्र अन्त हो जाता है और किसी म बहुत बाद मे होता है। उदाहरण के लिए मसोपोटामिया म मध्य पाषाणकालीन प्रवृतियाँ १८ ००० ई० पू० म दिखाई देने लगती हैं जबकि डेनमार्क मे पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था ८ ००० ई० पू० तक बनी रहती है। इसी प्रकार मध्य पाषाणकाल का अन्त भी विभिन्न प्रदेशो मे अलग अलग समय म होता है। पश्चिमी एशिया म मनुष्य कृषि-कर्म और पशु-पालन से छ-सात सहस्र ई० पू० म ही परिचित हो जाता है जबकि यूरोप मे इन आविष्कारो का लाभ कई सहस्र वर्ष पश्चात् उठाया जाता है।

८

नव-पाषाणकाल

जिस समय यूरोप म प्लीस्टोसीन युग के अन्त और होलोसीन युग के प्रारम्भ में, अर्थात मध्य-पाषाणकाल में भूमि वनो से आच्छादित होती जा रही थी और वहाँ की पूर्व-पाषाणकालीन जातियाँ स्वयं को नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयास कर रही थीं पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका मे महत्वपूर्ण भौगोलिक परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्तनो का प्रभाव मनुष्य के रहन-सहन पर भी पड़ा। अभी तक मनुष्य अपनी उदरपूर्ति के लिए पूर्णरूपेण प्रकृति पर अवलम्बित था। इस युग मे उसने पहली बार कृषि कर्म (Agriculture) और पशुपालन (Domesti

इस पृष्ठ के ऊपर स्विटजरलैण्ड के झीलो मे बनाये गये नव-पाषाणकालीन मकानो का काल्पनिक चित्र दिया गया है (पृ० ७९)। दाहिनी ओर किनारे से मकान में जाने के लिए पुल बना है जिसका एक भाग रात में हटाया जा सकता था। झोपड़ियो के बाहर मछली पकड़ने के जाल लटक रहे हैं। एक ऊँची झोपड़ी म जाने के लिए सीढ़ी बनी है।

cation of Animals) के द्वारा स्वयं खाद्य-पदार्थों का उत्पादन करना प्रारम्भ किया दूसरे शब्दों में उसने प्रकृति को अधिक खाद्य सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त उसने वनों से प्राप्त लकड़ी से नाव, मकान तथा कृषि-कर्म में काम आने वाले यन्त्रादि बनाना, अर्थात् काष्ठ-कला (Carpentry) मृदभाण्ड बनाना (Pottery) तथा कपड़ा बुनना (Weaving) इत्यादि कलाओं का आविष्कार भी किया। इन सब उद्योगों में उसे नये ढंग के मजबूत और तीक्ष्ण उपकरणों की आवश्यकता पड़ी। इसकी पूर्ति के लिए उसने पाषाण के पालिशदार औजार और हथियार (Polished Stone Implements) बनाना सीखा। इन उपकरणों के कारण पुरातत्ववेत्ता इस युग को नव पाषाणकाल (Neolithic या New Stone Age) के नाम से पुकारते हैं।

नव पाषाणकालीन उपनिवेश और तिथिक्रम

नव-पाषाणकाल निश्चित रूप से होलोसीन युग में प्रारम्भ हुआ। अभी तक किसी स्थान से ऐसा संकेत नहीं मिला है जिससे यह प्रतीत हो कि इस काल की सभ्यता का जन्म प्लीस्टोसीन युग में ही हो गया था। पूर्वी मेडीटूनियन प्रदेश में प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि सर्वप्रथम नव-पाषाणकालीन सभ्यता के तत्त्व इसी प्रदेश में उदित हुए (मानचित्र ३)। इस प्रदेश में मानव समूह बहुधा शताब्दियों तक ही नहीं सहस्राब्दियों तक एक ही स्थान पर निवास करते रहते थे। उनकी मिट्टी, सरपत और प्रस्तर-खण्डों से बनी झोपड़ियाँ नष्ट हो जाती थीं परन्तु वे उनके स्थान पर दूसरी बना लेते थे जिससे पुरानी झोपड़ी के अवशेष नयी झोपड़ी के नीचे दब जाते थे। यह प्रक्रिया दीर्घ काल तक चलती रहती थी। धीरे धीरे उस स्थान पर एक टीला (Tell) सा बन जाता था। यूनान, सीरिया, एशिया माइनर, तुर्किस्तान तथा ईरान के मैदान ऐसे टीलों से भरे पड़े हैं। इन टीलों की खुदाई करने पर ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक युग के अवशेष अविच्छिन्न रूप में मिल जाते हैं। ऐतिहासिक युग के प्राचीनतम अवशेषों की तिथि प्राप्त अभिलेखों के आधार पर तीन सहस्र ईसा पूर्व या इससे एक-दो शताब्दी अधिक मानी जाती है। इसमें पुराने अवशेष ताम्र और कांस्य काल के और सबसे पुराने अवशेष नव पाषाणकाल के हैं।

पश्चिमी एशिया के उपनिवेश—सबसे पुराना नव पाषाणकालीन उपनिवेश जिसका पुरातत्ववेत्ता पता लगा पाये हैं जोर्डन राज्य में जरिको ग्राम है (मानचित्र ३)। कार्बन (१४) परीक्षण से पता चलता है कि अब से ९,००० वर्ष पूर्व यहाँ पर शिकार और फल मूल संग्रह करने के अतिरिक्त कृषि-कर्म और पशुपालन द्वारा जीवनयापन करने वाले मनुष्य निवास कर रहे थे। अतः हम कह सकते

है कि पश्चिमी एशिया में नव-पाषाणकाल का जन्म लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। परन्तु यह स्मरणीय है कि इस ग्राम के निवासी मृदभाण्डों और पालिशदार पाषाण उपकरणों से अपरिचित थे। यह अवस्था यहाँ पर ६००० ई० पू० तक चलती रही। लगभग इसी समय पलेस्टाइन में कार्मेल पर्वत की गुफाओं के पास कुछ मानव समूह निवास कर रहे थे जिन्हें नतूफियन कहा जाता है। उनके पाषाण उपकरण मध्य-पाषाणकालीन यूरोपीय उपकरणों से साम्य रखते हैं परन्तु इनके साथ एक नया उपकरण हँसिया मिलता है जिसका उपयोग घास काटने में किया जाता होगा। कुर्दिस्तान के जरमोग्राम (लगभग ४७५० ई० पू०) में भी लगभग यही अवस्था मिलती है। यद्यपि इस स्थान के निवासियों ने मिट्टी की मूर्तियों को आग में पकाना सीख लिया था तथापि उनके पात्र अभी तक लकड़ी या पत्थर के होते थे। ईरान में स्यालक ग्राम के प्रथम स्तर से जिसकी तिथि कुछ बाद की है हम पहली बार कृषि-कर्म और पशुपालन के साथ कातने बुनने और मृदभाण्ड बनाने की कला का आविष्कार हो जाने के प्रमाण मिलते हैं। मध्य एशिया में अस्तराबाद नगर के समीप अनो (Anau) स्थान के प्राचीनतम स्तरों में कृषि-कर्म पशुपालन मृदभाण्ड कला और वस्त्र निर्माण कला के चिह्न मिलते हैं।[1]

मिश्र के उपनिवेश—नील नदी के पश्चिमी किनारे पर फायूम (Fayum) स्थान से ४३०० ई० पू० के अवशेष मिले हैं जिनमें पालित पशुओं की अस्थियाँ मछली पकड़ने के हार्पून लकड़ी के हत्थों में माइक्रोलिथ लगाकर बनाये गये हँसिये (चित्र ३५ ४) अनाज संग्रह करने के लिए बनाये गये गड्ढे (चित्र ३६) अर्थात् अन्नागार पाषाण की पालिशदार कुल्हाड़ियाँ मृदभाण्ड पत्थर के तवए और चकमक पत्थर के तीरों के सिरे सम्मिलित हैं। उनके तकुओं और कर्घों के अवशेषों में स्पष्ट है कि वे कपड़ा बुनना भी जानते थे। उनके अन्नागार विश्व इतिहास में अन्न संग्रह करने के प्रयास का प्रथम उदाहरण है। इस प्रकार के अन्नागार नील नदी के डेल्टा के उत्तर पश्चिमी भाग में मेरिम्डे (Merimde) स्थान के उत्खनन में तत्कालीन गाँव के प्रायः हर घर में मिले हैं। मिश्र के मध्य में तासा (Tasa) और नील नदी के पूर्व में अल उमरी (Al Omri) स्थानों से भी नव पाषाणकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ के निवासी कृषि-कर्म पशुपालन मृदभाण्ड कला और वस्त्र निर्माण से परिचित थे। तासा के समीप बदरी (Badari) स्थान से प्राप्त अवशेषों की सभ्यता कुछ बाद की है। बदरी के निवासियों के व्यापारिक

---

१ बहुत से विद्वान अनो के प्राचीनतम स्तरों को अन्य स्थानों के स्तरों से प्राचीन मानते हैं और यह विश्वास प्रकट करते हैं कि मध्य एशिया में ही नव पाषाणकालीन संस्कृति और कृषि-कर्म का जन्म हुआ।
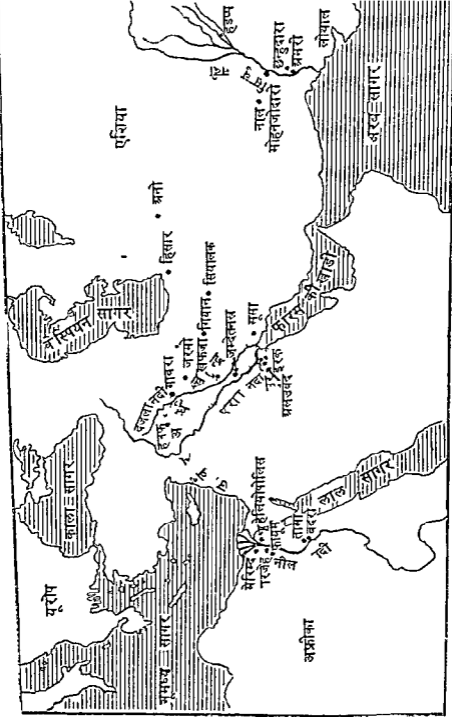
सम्बन्ध सीरिया से थे और वह लालसागर में उत्पन्न होने वाली कौड़ियों का प्रयोग करते थे।

यूरोप में नव-पाषाणकाल—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नव-पाषाणकालीन संस्कृति के कुछ तत्त्वों का उदय अब से लगभग दस सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया और मिस्र में हो चुका था। छः या सात सहस्र वर्ष पूर्व इसका विकसित रूप सामने आता है। यूरोप में नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ कुछ सहस्र वर्ष पश्चात् होता है। इस महाद्वीप में सर्वप्रथम क्रीट और यूनान में और उसके पश्चात् मध्य-यूरोप और पश्चिमी प्रदेशों में कृषि-कर्म और पशुपालन इत्यादि उद्योग प्रचलित होते हैं। डेनमार्क, उत्तरी जर्मनी और स्वीडन में तो नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ ३००० ई० पू० में होता है। मध्य यूरोप के नव-पाषाणकालीन मानवों को डेन्यूबियन कहा जाता है। उनकी संस्कृति के विकास का विशेष परिचय कोलन लिन्डलथाल (Koln Lindelthal) ग्राम के उत्खनन से मिला है।

नव-पाषाणकालीन संस्कृति अपने चर्मोत्कर्ष के समय चीन से लेकर आयरलैण्ड तक फैली हुई थी। अब भी इस संस्कृति का सर्वथा अन्त नहीं हो पाया है। अफ्रीका, अमरीका, न्यूजीलैण्ड और अन्य कई प्रदेशों में बहुत सी आदिम जातियाँ हाल ही तक नव-पाषाणयुगीन जीवन व्यतीत कर रही थीं और कुछ अब भी कर रही हैं।

नये आविष्कार

नव-पाषाणकालीन संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ लगभग सभी तत्कालीन जातियों में मिलती हैं, परन्तु उनका रूप जलवायु और अन्य प्रादेशिक विविधताओं के कारण स्थान-स्थान पर बदला हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए किसी स्थान पर वस्त्र बनाने के लिए पटसन का प्रयोग किया गया है तो कहीं सूत का। कहीं पशुपालन को अधिक महत्त्व दिया गया है तो कहीं कृषि-कर्म को। इस पर भी नव-पाषाणकालीन सभ्यता के प्रमुख तत्त्वों की साधारण रूप से विवेचना की जा सकती है।

कृषि-कर्म

कृषि-कर्म का आविर्भाव—जैसा कि हम देख चुके हैं, नव-पाषाणकालीन क्रान्ति को जन्म देने वाले परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल की प्रगतिशील मैग्डलेनियन जाति नहीं, वरन् पश्चिमी एशिया, उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका और सम्भवतः उत्तर-पश्चिमी भारत की अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई जातियाँ थीं। ये प्रदेश पूर्व-पाषाणकाल के अन्त में घास के हरे-भरे मैदान थे। होलोसीन युग के प्रारम्भ में जब जलवायु में विश्वव्यापी परिवर्तन हुये और उत्तरी यूरोप हिम के स्थान पर वनों से आच्छा-

मुक्ति पाने के लिए खेत को दो-तीन फसल के बाद छोड़ देते थे। कुछ वर्षों में, जब आसपास की सब भूमि अनुर्वर हो जाती थी तो वह किसी अन्य स्थान पर जा बसते थे। यह विधि आज भी अफ्रीका की बहुत सी जातियाँ और आसाम की नागा जाति अपनाये हुये हैं। परन्तु इस विधि में कठिनाई बहुत आती है। इसलिये कुछ स्थानों पर भूमि की उर्वरता लौटाने के लिये कृत्रिम उपायों की खोज होने लगी। डेन्यूबियनों ने यह खोज की कि अगर खेत में जंगली घास उगने दी जाय और फिर उसे जला दिया जाय तो भूमि की उर्वरता लौट आती है। यूनान और बल्कान प्रदेश की जातियों ने पशुओं और मानवों के मलमूत्र से भूमि की उर्वरता लौटाने की विधि का आविष्कार किया।

पशुपालन

पशुपालन का आविर्भाव—पश्चिमी एशिया और मडीट्रनियन प्रदेश में रहने वाली जातियाँ कृषि के साथ पशुपालन भी करती थीं। यह उद्योग भी तत्कालीन जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण अस्तित्व में आया। जब इन प्रदेशों में वर्षा कम होने लगी और घास के मैदान रेगिस्तानों में बदलने लगे तो यहाँ के वन्य पशु और मनुष्य दोनों ही नखलिस्तानों के समीप रहने के लिए बाध्य हो गये। इनमें बहुत से पशु जैसे, गाय, भैंस भेड़, बकरी तथा सुअर इत्यादि जो घास और चारा खाकर रह सकते थे, मानव आवासों के निकट चक्कर काटने लगे। इस समय तक मनुष्य इन पशुओं से काफी परिचित हो गया था। वह यह भी समझ गया था कि अगर पशु उसके समीप रहेंगे तो वह जब चाहे उनका शिकार कर सकता है। इसलिये उसने उनको अपने पास से भगाने के स्थान पर निकट आने के लिये प्रोत्साहित करना आरम्भ किया। वह अपने खेत से उत्पन्न चारा उन्हें खाने के लिए देने लगा और हिंस्र प्राणियों से उनकी रक्षा करने लगा। धीरे-धीरे ये पशु पूर्णरूपेण उस पर निर्भर रहने लगे। इस प्रकार पशुपालन उद्योग अस्तित्व में आया।

पहले पशुपालन या कृषि?—मनुष्य ने पहले पशुपालन प्रारम्भ किया या कृषि, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। बहुत से विद्वान् मानते हैं कि कुछ स्थानों पर पशुपालन और कुछ स्थानों पर कृषि-कर्म साथ-साथ आविर्भूत हुए। इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने, जिनकी संख्या बहुत कम है, यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पशुपालन का जन्म कृषि से पहले हुआ। परन्तु अधिकांश विद्वान, जिनमें गॉर्डन चाइल्ड भी सम्मिलित हैं यह विश्वास करते हैं कि कृषि के आविष्कार के बिना पशुओं के चारे की समस्या हल नहीं हो सकती थी इसलिये कृषि-कर्म का उदय पशुपालन के पूर्व हुआ होगा।

पशुपालन के लाभ—नव-पाषाणकालीन आर्थिक व्यवस्था में पशुपालन का महत्व कृषि से कम नहीं था। एक तो इससे मनुष्य के भोजन की समस्या बहुत कुछ

सुलझ गई। अब उसे शिकार की खोज में वनों में भटकना आवश्यक नहीं रहा। वह जब चाहे अपने पालित पशुओं को मारकर मांस प्राप्त कर सकता था। दूसरे, वह इनसे खाल और चमड़ा प्राप्त करता था जिनसे वस्त्र, तम्बू और भाण्ड जैसी उपयोगी वस्तुएँ बनती थी। पशुओं के सींगों से औज़ार, हथियार और आभूषण बनते थे। तीसरे, उसने यह भी खोज की कि जिस खेत में पशु चरते रहते हैं उसमें अच्छी उपज होती है। धीरे-धीरे वह गोबर की खाद की महत्ता को समझ गया। चौथे, उसने भेड़ों से ऊन प्राप्त करके अपनी वस्त्र समस्या का सुलझाया। इसमें कातने और बुनने की कलाएँ अस्तित्व में आई। पाचवें, जब वह पशुओं के स्वभाव मे अच्छी तरह परिचित हो गया तो उसने यह जाना कि उनका दूध भोजन के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। पशुओं पर माल लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना यद्यपि उसने अपेक्षाकृत बाद में सीखा, तथापि यह भी पशु-पालन का एक अति महत्त्वपूर्ण लाभ था इसमें सन्देह नहीं।

पशुपालन का प्रभाव—प्रारम्भ में पशुपालन से समाज के आर्थिक जीवन में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन पालित पशुओं की संख्या बढ़ जाने पर नई-नई समस्याएं सामने आईं। पशुओं को चराना, जंगलों को जलाकर चरागाह बनाना, चारे के लिए विशेष फसल उगाना तथा ऐसे ही अन्य बहुत से कार्य थे जिनके कारण कुछ व्यक्ति अपना सारा समय पशुपालन में ही लगाने लगे। कुछ समूहों के आर्थिक जीवन का मूलाधार पशुपालन ही हो गया।

यहाँ पर यह स्मरणीय है कि नव पाषाणकाल में खाद्य-सामग्री का 'उत्पादन' हुआ, इस का अर्थ यह नहीं है कि पूर्व पाषाणकाल की फल मूल और शिकार द्वारा भोजन संग्रह करने की प्रथा एकदम बन्द हो गई। शिकार, मछली पकड़ना तथा फल-मूल का संग्रह इस युग में भी थोड़ा बहुत चलता रहा। लेकिन धीरे-धीरे यह कार्य विशिष्ट व्यवसाय बनने लगे। आज भी मछली पकड़कर जीवन व्यतीत करने वाले मछेरे और शिकार करके उदरपूर्ति करने वाले व्याधों का पृथक व्यावसायिक श्रेणियों के रूप में अस्तित्व है।

मृद्भाण्ड कला

मृद्भाण्ड कला का आविष्कार—नव-पाषाणकालीन मानव केवल खाद्य-पदार्थों को अधिक मात्रा में उत्पन्न करके ही सन्तुष्ट नहीं हो गया। उसने कुछ ऐसी वस्तुओं का उत्पादन भी किया जो प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त नहीं होती। इनमें मिट्टी से बरतन, सूत, पटसन और ऊन से वस्त्र और काष्ठ से नाव और कृषि-कर्म सम्बन्धी यन्त्रों का निर्माण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कृषि-कर्म और पशुपालन के कारण खाद्य-सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलने लगी थी परन्तु इसका उपयोग करने के लिए पात्रों का अभाव था। अभी तक मनुष्य के पात्र काष्ठ और

पाषाण से बनते थे, परन्तु इनकी सहायता से भोजन पकाना बहुत कठिन था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का आविष्कार किया। यह आविष्कार कब और कैसे हुआ यह कहना कठिन है। हो सकता है किसी समय किसी स्त्री ने यह देखा हो कि मिट्टी से लिपी हुई टोकरी के आग मे जल जाने पर टोकरी के आकार का पकी हुई मिट्टी का बरतन बच रहता है, और इस अनुभव से लाभ उठाकर उसने मृदभाण्ड बनाने की कला को जन्म दिया हो। कुछ विद्वानो का अनुमान है कि यह आविष्कार मध्य पाषाणकाल मे ही हो गया था परन्तु इतना निश्चित है कि प्रचुर मात्रा मे मिट्टी के बतन नव पाषाण काल म ही बने।

कुम्हार की कला की जटिलता—मृदभाण्ड बनाना एक रासायनिक प्रक्रिया है। गीली मिट्टी जिससे बतन बनते है पानी म घुल जाती है और सुखा लेने के बाद भी आसानी से टूट जाती है। लकिन जब इसे ६००°C या इससे भी अधिक गम अग्नि म पकाया जाता है तो इसका लसलसापन मिट जाता है और यह लगभग पत्थर के समान कठोर हो जाती है। अब यह न तो पानी म घुलती है और न बिना जोर लगाय इसे तोडा जा सकता है। वस्तुत कुम्हार की कला का मूल इसी तथ्य म निहित है कि वह लसलसी मिट्टी को कोई भी आकार दे सकता है और आग म पकाकर उस आकार को स्थायी बना सकता है।

चित्र ३७ नव-पाषाणकालीन मृद्भाण्ड

कुम्हार की कला प्रारम्भ से ही बहुत जटिल थी। उस बर्तन बनाने मे लिये

अच्छी मिट्टी का चुनाव करना पडता था जिससे पकते समय बतन चटक न जाय। दूसर शब्दो मे उसे अच्छी मिट्टी की पहिचान से परिचित होना आवश्यक था। दूसरे उसे यह जानना आवश्यक था कि गीली मिट्टी से बने बतनो को पकान के प्रथम सुखाना होता है। मिट्टी स इच्छित आकार के भाण्डों का निर्माण करना भी कम कठिन नही था। प्रारम्भ म मनुष्य ने उसी आकार के बतन बनाय जिस आकार के उसके पत्थर और लकडी के बतन होत थ। धीरे धीरे उसने यह खोज की कि लसलसी मिट्टी से अनक आकार के बतन बनाय जा सकते हैं। परन्तु उस समय तक चाक (Potters wheel)का आविष्कार नहा हो पाया था। इसलिय वह अपनी कल्पना को सदैव मूतरूप नही दे सकता था। चाक के अभाव मे वह सुराही और घडा इत्यादि का निर्माण करने के लिए छल्ला विधि (Ring method) का प्रयोग करता था। इसम बतन का तला बनाकर उसके ऊपर मिट्टी की छल्ला कार पट्टिया एक दूसरे के ऊपर रखकर जोड दी जाती थी। यह विधि बहुत कठिन थी परन्तु चाक के अभाव म इसके बिना बर्तन बनाना असम्भव था।

बतनो के आग म पक जाने पर मिट्टी का रग बदल जाता है। यह रग मिट्टी की किस्म आग की तजी और पकाने के ढग तथा अन्य कई बातो पर निभर रहता है। नव-पाषाणकालीन मनुष्य न यह सीख लिया था कि किस प्रकार बतना को इच्छित रग दिया जा सकता है। आग की लपट लगने से बरतन काले पड जाते थ। इस कठिनाई को दूर करने के लिए पश्चिमी एशिया म भट्टी (Oven) का आविष्कार हुआ जिसमे ६००°C स १०००°C तक ताप देने पर भी धुआ लगकर बतन काले नही पडत थ। यूरोप म इस आविष्कार का लाभ लौह-युग के पव नही उठाया जा सका।

मृदभाण्ड कला का प्रभाव—प्रारम्भिक मनुष्य के लिए लसलसी मिट्टी का प्रस्तरसम हो जाना जादू से कम नहीं था। पत्थर से उपकरण बनाते समय मनुष्य केवल वही आकार उत्पन्न कर सकता है जो उनने बड पाषाण-खण्ड मे सम्भव हो। यही बात सीग और हड्डियो के साथ है। परन्तु मिट्टी के बतन बनाते समय यह बधन नही होता। इनके बनाने मे मनुष्य अपनी कल्पना स काम ले सकता है। इसीलिए मृदभाण्ड कला ने मनुष्य की विचार शक्ति को बहुत प्रभावित किया।

कातने और बुनने की कला

मिश्र और पश्चिमी एशिया के नव पाषाणकालीन अवशेषो से पता चलता है कि इस युग म कपडा बुनने की कला का आविष्कार हो गया था। सूत पटसन और ऊन से बने वस्त्र पूव-पाषाणकाल के खाल और पत्तियो से बने वस्त्रो का स्थान लेने लग थे। कपडा बुनने की कला भी बहुत ही जटिल है। इसका

आविष्कार अन्य कई आविष्कारों और उपकरणों के अस्तित्व में आये बिना सम्भव नहीं था। सर्वप्रथम इसके लिए एक ऐसे द्रव्य की आवश्यकता होती है जिससे सूत बन सके। मिश्र और यूरोप में इसकी पूर्ति पटसन से की गई। दूसरा द्रव्य कपास था। भारत में इसका प्रयोग ३००० ई० पू० में हो रहा था। लगभग इसी समय मसोपोटामिया में ऊन का प्रयोग हो रहा था। इससे स्पष्ट है कि कपड़ा उद्योग के अस्तित्व में आने के लिए विशिष्ट प्रकार के पशुओं का पालन और उन पौधों की खेती करना आवश्यक था जिनसे उपर्युक्त द्रव्य प्राप्त हो सकें। दूसरे, वस्त्र निर्माण के लिए आवश्यक था कि सूत कातने के लिए चर्खा और बुनने के

चित्र ३८

लिए कर्घा हो (चित्र ३८)। पुरातत्ववेत्ताओं को उत्खनन में चर्खे के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं। कर्घे का आविष्कार एशिया में नव पाषाणकाल में ही हो गया था। यह आविष्कार, जिसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है विश्व के महानतम आविष्कारों में से एक है।

काष्ठकला और नये उपकरण

पॉलिशदार उपकरण—हम देख चुके हैं कि नव-पाषाणकाल में यूरोप वनों से आच्छादित था। उत्तरी अफ्रीका पश्चिमी एशिया और उत्तर-पश्चिमी भारत का जलवायु भी, पूर्व-पाषाणकाल से अधिक शुष्क होने के बावजूद आधुनिक काल से अधिक नम था। इसलिये इन प्रदेशों में वन्य काष्ठ का अब जैसा अभाव न था। नव-पाषाणकालीन मानव ने इस काष्ठ का उपयोग करने के लिये और अपने नये उद्योगों में, जिनका हमने ऊपर विवेचन किया है सफलता प्राप्त करने के लिए नये पाषाणोपकरण बनाये। पूर्व-पाषाणकाल के मानव के हथियार और औजार बड़ौल और खुरदरे होते थे। परन्तु नव पाषाणकालीन मानव ने रगड़-रगड़ कर चिकने, चमकदार और सुडौल हथियार बनाने की विधि का आविष्कार किया। उनके हथियारों में कठोर पत्थर की पालिशदार कुल्हाडी (Polished Stone Axe) प्रमुख है (चित्र ३९)। इसको बनाने के लिए प्रस्तर खण्ड के एक सिरे को घिसकर धारदार बनाया जाता था और दूसरी ओर उसमें लकड़ी का

सींग की मूठ लगा दी जाती थी। इस प्रकार का हथियार पूर्व पाषाणकाल में अज्ञात था। पुराने पुरातत्त्ववेत्ता इस नव पाषाणकाल का प्रतीक मानते थे। इससे मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त हो गई कि वह वनों को काट सके और लकड़ी को चीर सके। इसमें काष्ठकला (Carpentry) का विकास हुआ। अब मनुष्य लकड़ी का उपयोग नाव मकान और अन्य वस्तुएँ बनाने में करने लगा। कुल्हाड़ी
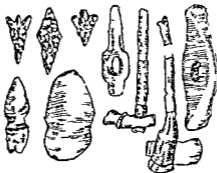
चित्र ३६ नव-पाषाणकालीन पालिशदार उपकरण

ही परिवर्तित रूप में युद्धों में काम आने वाली गदा परशु और मुगरी बनी। गदाएँ पश्चिमी एशिया में गदाकार और उत्तरी अफ्रीका तथा यूरोप में तश्तरी के आकार की बनती थीं। युद्धों में गदाओं के साथ भाले और धनुष-बाण का प्रयोग चलता रहा। भालों और तीरों के पाषाण निर्मित सिरे सर्वत्र प्रचुरता से मिलते हैं (चित्र ३६)।

अन्य उपकरण—नव-पाषाणकालीन मानव का बौद्धिक स्तर पूर्व-पाषाणकालीन मानव से बहुत ऊँचा था। उसने अपने पूर्वजों की भांति पाषाण सींग, अस्थि और हाथी दांत इत्यादि से छेनी आरी हार्पून सुई पिन सुआ कुदाली कंघ मनके और चाकू इत्यादि का निर्माण ही नहीं किया वरन अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अन्यान्य औजार और हथियार भी बनाये। उसने ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाई (चित्र ३४ पृ० ६६) भीलों तथा नदियों को पार करने के लिए नाव का (चित्र ३४, पृ० ६६) आविष्कार किया। फसल काटने के लिए हंसिया (चित्र ३५ ४-५) सूत कातने के लिए तकली और चर्खे तथा बुनने के लिए करघे का निर्माण किया। वह सम्भवत मिट्टी और लकड़ी के ढोल भी बनाता था जिन पर पशुओं की खाल चढ़ी होती थी। रीड की शाखा से सीटियाँ बनाने की कला भी उसे ज्ञात थी।

नवीन आविष्कारों का प्रभाव

जनसंख्या में वृद्धि—ऊपर हमने नव पाषाणकाल में किये गये जिन आविष्कारों

का विवेचन किया है, उन्होंने मानव जीवन मे एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। पूर्व-पाषाण काल मे, जो कई लाख वर्ष तक चला मनुष्य सदैव प्रकृति पर निर्भर रहा। वह केवल उन्ही पशुओ का शिकार कर सकता था जो उसे वना में मिल जाते थे और उन्ही फलो और कन्द-मूलो का संग्रह कर सकता था जो वन्यावस्था मे उत्पन्न होते थे। इससे दो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थीं। एक तो जनसंख्या उससे अधिक नही बढ़ पाती थी, जितनी की उदरपूर्ति उपलब्ध वन्य पशुओ और फल मूलो से हो सकती थी। दूसरे, यदि किसी प्रदेश में किसी समय जलवायु में परिवर्तन हो जाता था और उस जलवायु मे पोषित होने वाले पशु और फलमूल विलुप्त हो जाते थे तो वहाँ के मानव समूहो को अपना अस्तित्व बनाये रखना असम्भव हो जाता था। मैग्डेलेनियना के साथ, जो पूर्व पाषाणकाल की सर्वाधिक सुसस्कृत जाति थी, यही हुआ (पृ०६१)। नव-पाषाणकाल मे मनुष्य ने प्रथम बार यह ज्ञान प्राप्त किया कि किस प्रकार कृषि और पशु पालन के द्वारा प्रकृति को उससे अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया जा सकता है जितनी वन्यावस्था मे उत्पन्न होती थी। अब किसी ग्राम के निवासियो की जनसख्या बढ जाने पर केवल दो-चार अतिरिक्त खेतो म फसल पैदा करनी पडती या पालित पशुओं की सख्या बढानी होती थी। इस व्यवस्था की सफलता का सबसे सबल प्रमाण नव पाषाणकाल मे जनसख्या में वृद्धि होना है। इस काल के मानव समूह पूर्व-पाषाणकाल और मध्य-पाषाणकाल के मानव समूहो से बड और सख्या म अधिक थे। दूसरे, इसकाल मे मानव का निवास उन प्रदेशो म भी दिखाई देता है जहाँ पूर्व पाषाणकाल मे या तो उसका अस्तित्व बिल्कुल न था और यदि था तो बहुत कम सख्या म। तीसरे, पूर्व-पाषाण काल के प्रस्तरित मानव अवशेषो की सख्या कुछ ही सौ है जबकि नव-पाषाणकाल के अवशेष सहस्रो की सख्या म उपलब्ध होते हैं। नव-पाषाणकाल म जन सख्या मे वृद्धि होने मे एक और तथ्य से सहायता मिली। पूर्व-पाषाणकाल में बच्च आर्थिक दृष्टि से भार थ। वे शिकार मे तो सहायता दे नही सकते थे उल्टे अपनी उदरपूर्ति के लिए भोजन की माग करत थ। नव पाषाणकाल मे बच्चो का होना लाभप्रद हो गया। वे पशुओ को चरागाह म ल जा सकते थे, खेतो की देखभाल कर सकते थ और अन्य कई प्रकार से परिवार की आर्थिक गतिविधि मे हाथ बँटा सकते थे।

स्थायी जीवन का प्रारम्भ—बहुधा यह विश्वास किया जाता है कि पूर्व-पाषाणकाल मे मनुष्य शिकार की खोज मे घूमता फिरता रहने के कारण खानाबदोश (यायावर) था, परन्तु नव-पाषाणकाल म कृषि-कर्म प्रारम्भ करते ही स्थायी रूप से घर बनाकर रहने लगा। यह विश्वास भ्रामक है। आखेट का यायावर होने से और कृषि-कर्म का स्थायी जीवन व्यतीत करने से कोई निश्चित सम्बन्ध

नहीं है। मैग्डेलेनियन शिकारी थे, परन्तु निश्चित रूप से कई सन्ततियों तक एक ही गुफा में निवास करते रहते थे। दूसरी ओर नव-पाषाणकाल में, कम-से-कम उन प्रदेशों में, जहाँ भूमि की उर्वरता दो तीन फ़सल के बाद कम हो जाती थी मनुष्य को कृषि-कर्म करते हुए भी यायावर जीवन व्यतीत करना पड़ता था। फिर भी यह सत्य है कि उन प्रदेशों में, जहाँ की भूमि की उर्वरता प्रतिवर्ष बाढ़ आने के कारण सदैव बनी रहती थी और जहाँ मनुष्य ने खाद देकर उर्वरता लौटाने की विधि ढूंढ निकाली थी, वहाँ वह घर बनाकर स्थायी जीवन व्यतीत कर सकता था और करता था।

मकानों के प्रकार—पूर्व-पाषाणकालीन मानव घर बनाना नहीं जानता था। उसका आश्रय-स्थान गुफाएँ थीं। लेकिन नव-पाषाणकालीन मानव ने सीढ़ी, घिरनी (Pulley) और चूल (Hinge) इत्यादि का आविष्कार कर लिया था। इससे उसे रहने के लिए स्थायी मकान बनाने में बहुत सहायता मिली। मिश्र में मकान बनाने में रीड (नरकुल) का प्रयोग होता था (चित्र ४०)। पश्चिमी एशिया और यूरोप में घर प्रारम्भ में मिट्टी और टट्टर तथा बाद में कच्ची ईंटों के बनाये जाते थे। ये बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते थे। स्वीट्जरलैण्ड में झीलों पर बनाये गये मकान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं (चित्र ३४, पृ० ६६)। इन मकानों के अवशेष १८५४ ई० में, जब असाधारण गर्मी पड़ने के कारण झीलों का पानी बहुत सूख गया, प्रकाश में आये। ये मकान लकड़ी के लट्ठों को झील के पानी में गाड़ कर बनाये गये थे। इनमें आने-जाने के लिए सीढ़ियों का प्रबन्ध था। इनकी दीवारों को टट्टर पर मिट्टी का प्लास्टर करके और छत को भूसे, छाल और रीड (नरकुल) से बनाया गया था। इसके निर्माता निश्चित रूप से कुशल बढ़ई रहे होंगे। ऐसे जलगृह फ्रांस, स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड इटली, रूस दक्षिणी और उत्तरी अमरीका तथा भारत में भी प्राप्त हुए हैं। आजकल भी जावा, सुमात्रा और न्यूगिनी में इनका प्रचलन है। सुरक्षा और सफाई की दृष्टि से निश्चित रूप से ये मकान बहुत उत्तम थे।

चित्र ४० प्रागैतिहासिक मिश्र की रीड की एक झोपड़ी का चित्र

सामूहिक जीवन

ग्रामों की योजना—नव पाषाणकालीन मानव छोटे छोटे ग्रामों में रहते थे। इनका क्षेत्रफल प्राय डेढ़ एकड़ से दस एकड़ तक होता था। जरिको ग्राम

(प्रथम स्तर) का क्षेत्रफल ८ एकड़ था। एक ग्राम में साधारणतः आठ-दस से लेकर तीस-पैंतीस तक घर होते थे। इनके निवासियों को सड़कें और गलियाँ मिल-जुलकर बनानी पड़ती थी। बहुधा ग्राम को सुरक्षा की दृष्टि से खाई या चहारदिवारी से घेर दिया जाता था। जेरिको ग्राम की खाई २७ फुट चौड़ी और ५ फुट गहरी थी। खाइयों का निर्माण भी गाँव के व्यक्ति सामूहिक रूप से करते होंगे। मकान, सड़कों और गलियों के दोनों ओर व्यवस्थित योजना के अनुसार बनाये जाते थे। यह भी उनकी सामाजिक-जीवन की विकसित अवस्था का प्रमाण है।

स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन—नव-पाषाणकालीन समाज में स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन (Division of Labour) हो गया था। जैसा कि हमने देखा है, इस काल के अधिकांश आविष्कार स्त्रियों ने किये थे। उन्हीं को कृषि-कर्म, मृद्भाण्ड कला, कताई और बुनाई के आविष्कारों का श्रेय प्राप्त है। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि उन्हें अधिकांश पारिवारिक कार्यों को स्वयं करना होता था। उन पर खेत जोतने, आटा पीसने, खाना बनाने, सूत कातने, कपड़ा बुनने तथा आभूषण और बरतन इत्यादि बनाने का उत्तरदायित्व था। पुरुष खेती के काम में स्त्रियों की सहायता करते थे तथा पशुओं का पालन और शिकार करते थे। औजार और हथियार भी वही बनाते थे। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता था। परन्तु इसके बदले में वे सामूहिक जीवन में प्रमुख भाग लेती थीं। समाज की व्यवस्था मातृसत्तात्मक (Matriarchal) थी। विशेषतः जिन समूहों में कृषि-कर्म प्रमुख उद्यम था, स्त्रियों को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परन्तु जिन स्थानों पर पशुपालन प्रमुख उद्यम था, वहाँ पुरुषों को अधिक सत्ता मिली हुई थी।

परिवारों और ग्रामों की आत्म निर्भरता—स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन हो जाने पर भी समाज में सम्मिलित रूप से औद्योगिक विशिष्टीकरण (Specialisation of Industries) नहीं हो पाया था। प्रत्येक परिवार को आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु, खाद्य-सामग्री, मृद्भाण्ड, कपड़ा, औजार, हथियार इत्यादि स्वयं उत्पन्न करनी या बनानी होती थी। परिवार के समान गाँव भी आत्म-निर्भर होते थे। गाँव के सब व्यक्तियों को आवश्यक खाद्य-सामग्री तथा पाषाण-खण्ड, लकड़ी और अन्य वस्तुएँ स्वयं जुटानी पड़ती थी। गाँवों की आत्म-निर्भरता और विशिष्टीकरण का अभाव नव पाषाणकालीन समाज की आर्थिक व्यवस्था की विशेषता है। इसका प्रमुख कारण था तत्कालीन युग में यातायात के साधनों का अभाव। गाड़ियों के अभाव में स्त्रियाँ माल ढोने का कष्टकर कार्य करती थी इसलिये एक गाँव से दूसरे गाँव को माल भेजना आसान कार्य नहीं था। दूसरे, नव-पाषाणकालीन ग्राम बहुधा घने जंगलों, नखलिस्तानों या पहाड़ों की घाटियों में अवस्थित थे। इसलिये उनका

लिए शत्रपिश पर निर्भर रहते थे। इनके पाषाण उपकरण बहुत आदिम कोटि के—इयोलियो से मिलते जुलते—थे।

(इ) किचेन मिडेन (Kitchen Midden) संस्कृति—पिछले सौ वर्षों में फ्रांस सार्डीनिया पुर्तगाल ब्राजील जापान मंचूरिया और डेनमार्क में प्रागैतिहासिक काल के अवशेषों के ऐसे ढेर मिले हैं जिनमें समुद्री प्राणियों जैसे मछलियाँ कछुए घोंघे इत्यादि के खोल थलचर पशुओं की अस्थियाँ तथा हड्डी, सींग और पाषाण के औजार और हथियार सम्मिलित हैं। डेनमार्क में इन्हें किचेन मिडेन (Kitchen Midden) कहते हैं। इनका समय अब से लगभग १०००० वर्ष पूर्व माना जाता है।

(उ) मैग्लेमोजियन (Maglemosian) संस्कृति—परवर्ती-मध्य-पाषाणयुग में दक्षिणी स्वीडन और नार्वे इत्यादि देशों में भी शीत कम हो जाने पर पूर्व-पाषाण-कालीन जातियों के वंशज आकर रहने लगे। उनके प्रारम्भिक हथियार ऑरि-न्यशियन और मैग्डलेनियन हथियारों के समान है परन्तु कुछ बाद में एक विशिष्ट संस्कृति का विकास हो जाता है जिसे मैग्लेमोजियन-संस्कृति (Maglemosian Culture) कहा जाता है। इस संस्कृति के निर्माता अस्थियों से मछली पकड़ने के काँटे और हार्पून बनाते थे। वे रेनडियर के सींग में बीच में छेद करके और हत्था लगाकर कुल्हाड़ी बनाते थे और हड्डियों के उपकरणों पर ज्यामितिक चित्र भी बनाना जानते थे।

मध्य पाषाणकाल की तिथि—पूर्व-पाषाणकाल की अपेक्षा मध्य-पाषाणकाल का तिथिक्रम निश्चित करना अधिक कठिन है। एक तो पूर्व-पाषाणकाल बहुत दीर्घ समय तक चला। दूसरे उस युग में मानव प्रगति की प्रक्रिया बहुत धीमी रही। उस समय विभिन्न प्रदेशों की संस्कृतियों में अधिक अन्तर नहीं था। परन्तु मध्य-पाषाणकाल में प्रगति की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है और विभिन्न प्रदेशों में सांस्कृतिक भेद बढ़ जाता है। तीसरे किसी प्रदेश में पूर्व पाषाणकालीन व्यवस्था का शीघ्र अन्त हो जाता है और किसी में बहुत बाद में होता है। उदाहरण के लिए मसोपोटामिया में मध्य पाषाणकालीन प्रवृत्तियाँ १८००० ई० पू० में दिखाई देने लगती हैं जबकि डेनमार्क में पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था ८००० ई० पू० तक बनी रहती है। इसी प्रकार मध्य पाषाणकाल का अन्त भी विभिन्न प्रदेशों में अलग अलग समय में होता है। पश्चिमी एशिया में मनुष्य कृषि-कर्म और पशु-पालन से छ-सात सहस्र ई० पू० में ही परिचित हो जाता है जबकि यूरोप में इन आविष्कारों का लाभ कई सहस्र वर्ष पश्चात उठाया जाता है।

८

नव-पाषाणकाल

जिस समय यूरोप में प्लीस्टोसीन युग के अन्त और होलोसीन युग के प्रारम्भ में अर्थात् मध्य-पाषाणकाल में भूमि वनों से आच्छादित होती जा रही थी और वहाँ की पूर्व-पाषाणकालीन जातियाँ स्वयं को नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयास कर रही थीं, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में महत्त्वपूर्ण भौगोलिक परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्तनों का प्रभाव मनुष्य के रहन-सहन पर भी पड़ा। अभी तक मनुष्य अपनी उदरपूर्ति के लिए पूर्णरूपेण प्रकृति पर अवलम्बित था। इस युग में उसने पहली बार कृषि कर्म (Agriculture) और पशुपालन (Domesti-

---

इस पृष्ठ के ऊपर स्वीटजरलैण्ड के झीलों में बनाये गये नव पाषाणकालीन मकानों का काल्पनिक चित्र दिया गया है (पृ० ७६)। दाहिनी ओर किनारे से मकान में जाने के लिए पुल बना है जिसका एक भाग रात में हटाया जा सकता था। झोपड़ियों के बाहर मछली पकड़ने के जाल टँगे रहे हैं। एक ऊँची झोपड़ी में जाने के लिए सीढ़ी बनी है।

cation of Animals) के द्वारा स्वयं खाद्य-पदार्थों का 'उत्पादन' करना प्रारम्भ किया, दूसरे शब्दों में उसने प्रकृति को अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त उसने वनों से प्राप्त लकड़ी से नाव, मकान तथा कृषि-कर्म में काम आने वाले यन्त्रादि बनाना, अर्थात् काष्ठ-कला (Carpentry), मृद्भाण्ड बनाना (Pottery) तथा कपड़ा बुनना (Weaving) इत्यादि कलाओं का आविष्कार भी किया। इन सब उद्योगों में उसे नये ढंग के मजबूत और तीक्ष्ण उपकरणों की आवश्यकता पड़ी। इसकी पूर्ति के लिए उसने पाषाण के पॉलिशदार औज़ार और हथियार (Polished Stone Implements) बनाना सीखा। इन उपकरणों के कारण पुरातत्त्ववेत्ता इस युग को नवपाषाणकाल (Neolithic या New Stone Age) के नाम से पुकारते हैं।

नव-पाषाणकालीन उपनिवेश और तिथिक्रम

नव-पाषाणकाल निश्चित रूप से होलोसीन युग में प्रारम्भ हुआ। अभी तक किसी स्थान से ऐसा संकेत नहीं मिला है जिससे यह प्रतीत हो कि इस काल की सभ्यता का जन्म प्लीस्टोसीन युग में ही हो गया था। पूर्वी मेडीट्रेनियन प्रदेश से प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि सर्वप्रथम नव-पाषाणकालीन सभ्यता के तत्त्व इसी प्रदेश में उदित हुए (मानचित्र ३)। इस प्रदेश में मानव समूह बहुधा, *शताब्दियों तक ही नहीं सहस्राब्दियों तक, एक ही स्थान पर निवास करते रहते* थे। उनकी मिट्टी, सरपत और प्रस्तर-खण्डों से बनी झोपड़ियाँ नष्ट हो जाती थीं, परन्तु वे उनके स्थान पर दूसरी बना लेते थे, जिससे पुरानी झोपड़ी के अवशेष नयी झोपड़ी के नीचे दब जाते थे। यह प्रक्रिया दीर्घ काल तक चलती रहती थी। धीरे धीरे उस स्थान पर एक टीला (Tell) सा बन जाता था। यूनान, सीरिया, एशिया माइनर, तुर्किस्तान तथा ईरान के मैदान ऐसे टीलों से भरे पड़े हैं। इन टीलों की खुदाई करने पर ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक युग के अवशेष अविच्छिन्न रूप में मिल जाते हैं। ऐतिहासिक युग के प्राचीनतम अवशेषों की तिथि प्राप्त अभिलेखों के आधार पर तीन सहस्र ईसा पूर्व या इससे एक-दो शताब्दी अधिक मानी जाती है। इससे पुराने अवशेष ताम्र और कांस्य काल के और सबसे पुराने अवशेष नव-पाषाणकाल के हैं।

पश्चिमी एशिया के उपनिवेश—सबसे पुराना नव-पाषाणकालीन उपनिवेश, जिसका पुरातत्त्ववेत्ता पता लगा पाये हैं, जोर्डन राज्य में जेरिको ग्राम है (मानचित्र ३)। कार्बन (१४) परीक्षण से पता चलता है कि अब से ९,००० वर्ष पूर्व यहाँ पर शिकार और फल-मूल संग्रह करने के अतिरिक्त कृषि-कर्म और पशुपालन *द्वारा जीवनयापन करने वाले मनुष्य निवास कर रहे थे। अतः हम कह सकते*

है कि पश्चिमी एशिया में नव-पाषाणकाल का जन्म लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। परन्तु यह स्मरणीय है कि इस ग्राम के निवासी मृद्भाण्डों और पॉलिशदार पाषाण उपकरणों से अपरिचित थे। यह अवस्था यहाँ पर ६,००० ई० पू० तक चलती रही। लगभग इसी समय पेलेस्टाइन में कार्मेल पर्वत की गुफाओं के पास कुछ मानव-समूह निवास कर रहे थे जिन्हें नतूफियन कहा जाता है। उनके पाषाण उपकरण मध्य-पाषाणकालीन यूरोपीय उपकरणों से साम्य रखते हैं, परन्तु इनके साथ एक नया उपकरण हँसिया मिलता है जिसका उपयोग घास काटने में किया जाता होगा। कुर्दिस्तान के जरमोग्राम (लगभग ४७५० ई० पू०) में भी लगभग यही अवस्था मिलती है। यद्यपि इस स्थान के निवासियों ने मिट्टी की मूर्तियों को आग में पकाना सीख लिया था तथापि उनके पात्र अभी तक लकड़ी या पत्थर के होते थे। ईरान में स्यालक ग्राम के प्रथम स्तर से, जिसकी तिथि कुछ बाद की है, हमें पहली बार कृषि-कर्म और पशुपालन के साथ कातने, बुनने और मृद्भाण्ड बनाने की कला का आविष्कार हो जाने के प्रमाण मिलते हैं। मध्य एशिया में अस्त्राबाद नगर के समीप अनो (Anau) स्थान के प्राचीनतम स्तरों में कृषि-कर्म, पशुपालन, मृद्भाण्ड कला और वस्त्र-निर्माण कला के चिह्न मिलते हैं।[1]

मिस्र के उपनिवेश—नील नदी के पश्चिमी किनारे पर **फायूम** (Fayum) स्थान से ४३०० ई० पू० के अवशेष मिले हैं जिनमें पालित पशुओं की अस्थियाँ, मछली पकड़ने के हार्पून, लकड़ी के हत्थों में माइक्रोलिथ लगाकर बनाये गये हँसिये (चित्र ३५,४), अनाज संग्रह करने के लिए बनाये गये गड्ढे (चित्र ३६) अर्थात् अन्नागार, पाषाण की पॉलिशदार कुल्हाड़ियाँ, मृद्भाण्ड, पत्थर के तवुए और चकमक पत्थर के तीरों के सिरे सम्मिलित हैं। उनके तकुओं और करघों के अवशेषों से स्पष्ट है कि वे कपड़ा बुनना भी जानते थे। उनके अन्नागार विश्व इतिहास में अन्न संग्रह करने के प्रयास का प्रथम उदाहरण हैं। इस प्रकार के अन्नागार नील नदी के डेल्टे के उत्तर-पश्चिमी भाग में **मेरिम्दे** (Merimde) स्थान के उत्खनन में, तत्कालीन गाँव के प्राय हर घर में, मिले हैं। मिस्र के मध्य में **तासा** (Tasa) और नील नदी के पूर्व में **अल-उमरी** (Al Omari) स्थानों से भी नव-पाषाणकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं यहाँ के निवासी कृषि-कर्म, पशुपालन, मृद्भाण्ड-कला और वस्त्र निर्माण से परिचित थे। तासा के समीप **बदरी** (Badari) स्थान से प्राप्त अवशेषों की सभ्यता कुछ बाद की है। बदरी के निवासियों के व्यापारिक

---

१. बहुत से विद्वान् अनो के प्राचीनतम स्तरों को अन्य स्थानों के स्तरों से प्राचीन मानते हैं और यह विश्वास प्रकट करते हैं कि मध्य एशिया में ही नव-पाषाणकालीन संस्कृति और कृषि-कर्म का जन्म हुआ।

यूरोप
काला सागर
कैस्पियन सागर
एशिया
भूमध्य सागर
अफ्रीका
मेरिम्द
गरजेह
हेलियोपोलिस
फायूम
ताशा
बदरी
लाल सागर
गावरा
जरमो
खफजा
गियान
सियालक
हिसार
अनो
जम्देतनस्र
सूसा
उर
इरक
अलउबद
फारस की खाड़ी
अरब सागर
नाल
मोहनजोदारो
छहुदारा
अनरी
नोयाल
हड़प

मानचित्र ४

सम्बन्ध सीरिया मे थे और वह लालसागर मे उत्पन्न होने वाली कौडियो का प्रयोग करते थे।

यूरोप में नव-पाषाणकाल—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नव-पाषाण-कालीन सस्कृति के कुछ तत्त्वो का उदय अब से लगभग दस सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया और मिश्र मे हो चुका था। छ या सात सहस्र वर्ष पूर्व इसका विकसित रूप सामने आता है। यूरोप मे नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ कुछ सहस्र वर्ष पश्चात् होता है। इस महाद्वीप मे सर्वप्रथम क्रीट और यूनान मे और उसके पश्चात् मध्य-यूरोप और पश्चिमी प्रदेशो म कृषि-कर्म और पशुपालन इत्यादि उद्योग प्रचलित होते हैं। डेनमार्क, उत्तरी जर्मनी और स्वीडन मे तो नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ २००० ई० पू० में होता है। मध्य यूरोप के नव-पाषाणकालीन मानवो को डेन्यूबियन कहा जाता है। उनकी सस्कृति के विकास का विशद परिचय कोल्न लिन्डलथाल (Koln Lindelthal) ग्राम के उत्खनन से मिला है।

नव-पाषाणकालीन सस्कृति अपने चर्मोत्कर्ष के समय चीन से लेकर आयरलैण्ड तक फैली हुई थी। अब भी इस सस्कृति का सर्वथा अन्त नही हो पाया है। अफ्रीका, अमरीका, न्यूजीलैण्ड और अन्य कई प्रदेशो मे बहुत सी आदिम जातियाँ हाल ही तक नव-पाषाणयुगीन जीवन व्यतीत कर रही थी और कुछ अब भी कर रही है।

नये आविष्कार

नव-पाषाणकालीन सस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ लगभग सभी तत्कालीन जातियो मे मिलती हैं, परन्तु उनका रूप जलवायु और अन्य प्रादेशिक विविध-ताओ के कारण स्थान-स्थान पर बदला हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए किसी स्थान पर वस्त्र बनाने के लिए पटसन का प्रयोग किया गया है तो कही सूत का। कही पशुपालन को अधिक महत्त्व दिया गया है तो कही कृषि-कर्म को। इस पर भी नव-पाषाणकालीन सभ्यता के प्रमुख तत्त्वो की साधारण रूप से विवेचना की जा सकती है।

कृषि-कर्म

कृषि-कर्म का आविर्भाव—जैसा कि हम देख चुके है, नव-पाषाणकालीन क्रान्ति को जन्म देने वाली परवर्ती-पूर्व पाषाणकाल की प्रगतिशील मैंग्डलेनियन जाति नही, वरन् पश्चिमी एशिया, उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका और सम्भवत उत्तर-पश्चिमी भारत की अपेक्षाकृत पिछडी हुई जातियाँ थी। ये प्रदेश पूर्व-पाषाणकाल के अन्त म घास के हरे-भरे मैदान थ। होलोसीन युग के प्रारम्भ मे जब जलवायु मे विश्वव्यापी परिवर्तन हुए और उत्तरी यूरोप हिम के स्थान पर वनो से आच्छा-

दित हो गया तव इन प्रदेशों का जलवायु भी पहले से अधिक शुष्क हो गया और घास के हरे-भरे मैदान रेगिस्तान बनने लगे। इससे यहाँ के निवासियों को केवल शिकार पर जीवन व्यतीत करना असम्भव मालूम देने लगा और वे यह सोचने के लिए विवश हो गये कि खाद्य-सामग्री कैसे बढ़ाई जाये। इस विषय मे पुरुष वर्ग तो अधिक सफलता प्राप्त न कर सका, परन्तु स्त्रियो ने, जो जगली घासों के खाने योग्य बीज इत्यादि जमा करती रहती थी, यह खोज की कि अगर इन बीजो को गीली मिट्टी मे दवा दिया जाये तो कुछ महीनो मे उन बीजो की कई गुनी मात्रा उत्पन्न हो जाती है। इससे कृषि-कर्म का जन्म हुआ। कृषि-कर्म का जन्म सर्वप्रथम किस प्रदेश मे हुआ, इसके विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। पेरी महोदय ने यह श्रेय नील नदी की घाटी को दिया है और रूसी विद्वान् वैविलोव ने अफगानिस्तान और उत्तर पश्चिमी चीन को। आजकल अधिकाश विद्वान् पैलेस्टाइन के नतूफियनों को इसका आविष्कार करने वाला मानते हैं।

मुख्य फसलें—प्रकृति ने ऐसे बहुत से पौधे बनाये है जिनके बीज मनुष्य खा सकता है, जैसे गेहूँ, जौ, चना, चावल, बाजरा, मक्का, जमीकन्द और आलू इत्यादि। इनमे गेहूँ और जौ सबसे अधिक शक्तिवर्द्धक हैं। इनका सग्रह करने में भी दिक्कत नही होती और ये थोडे बीज से ही काफी मात्रा मे उत्पन्न हो जाते है।

चित्र ३५ : नव-पाषाणकाल के कुदाल

इसके अतिरिक्त इनके उत्पादन मे श्रम भी बहुत कम पडता है। केवल खेत जोतने, बोने और काटने के समय मेहनत करनी पड़ती है, शेष समय किसान

सुलझ गई। अब उसे शिकार की खोज मे वनो मे भटकना आवश्यक नही रहा। वह जब चाहे अपने पालित पशुओं को मारकर मांस प्राप्त कर सकता था। दूसरे, वह इनसे खाल और चमडा प्राप्त करता था जिनसे वस्त्र, तम्बू और भाण्ड जैसी उपयोगी वस्तुएँ बनती थी। पशुओं के सींगो से औजार, हथियार और आभूषण बनते थे। तीसरे, उसने यह भी खोज की कि जिस खेत मे पशु चरते रहते है उसमे अच्छी उपज होती है। धीरे-धीरे वह गोबर की खाद की महत्ता को समझ गया। चौथे, उसने भेडो से ऊन प्राप्त करके अपनी वस्त्र समस्या को सुलझाया। इससे कातने और बुनने की कलाएँ अस्तित्व मे आई। पांचवे, जब वह पशुओं के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हो गया तो उसने यह जाना कि उनका दूध भोजन के रूप मे प्रयुक्त हो सकता है। पशुओं पर माल लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना यद्यपि उसने अपेक्षाकृत बाद मे सीखा, तथापि यह भी पशु-पालन का एक अति महत्त्वपूर्ण लाभ था इसमें सन्देह नही।

पशुपालन का प्रभाव—प्रारम्भ मे पशुपालन से समाज के आर्थिक जीवन मे अधिक परिवर्तन नही हुआ। लेकिन पालित पशुओं की संख्या बढ जाने पर नई-नई समस्याएँ सामने आई। पशुओं को चराना जगलो को जलाकर चरागाह बनाना, चारे के लिए विशेष फसल उगाना तथा ऐसे ही अन्य बहुत से कार्य थे जिनके कारण कुछ व्यक्ति अपना सारा समय पशुपालन म ही लगाने लगे। कुछ समूहो के आर्थिक जीवन का मूलाधार पशुपालन ही हो गया।

यहाँ पर यह स्मरणीय है कि नव-पाषाणकाल मे खाद्य-सामग्री का 'उत्पादन' हुआ, इस का अर्थ यह नही है कि पूर्व-पाषाणकाल की फल-मूल और शिकार द्वारा भोजन सग्रह करने की प्रथा एकदम बन्द हो गई। शिकार, मछली पकडना तथा फल-मूल का सग्रह इस युग मे भी थोडा बहुत चलता रहा। लेकिन धीरे-धीरे यह कार्य विशिष्ट व्यवसाय बनने लगे। आज भी मछली पकडकर जीवन व्यतीत करने वाले मछेरे और शिकार करके उदरपूर्ति करने वाले व्याधो का पृथक व्यावसायिक श्रेणियो के रूप मे अस्तित्व है।

मृद्भाण्ड कला

मृद्भाण्ड कला का आविष्कार—नव-पाषाणकालीन मानव केवल खाद्य-पदार्थों को अधिक मात्रा मे उत्पन्न करके ही सन्तुष्ट नही हो गया। उसने कुछ ऐसी *वस्तुओं का उत्पादन भी किया जो प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप मे प्राप्त नहीं होती।* इनमे मिट्टी से बरतन, सूत, पटसन और ऊन से वस्त्र और काष्ठ से नाव और कृषि-कर्म सम्बन्धी यन्त्रो का निर्माण विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। कृषि-कर्म और पशुपालन के कारण खाद्य-सामग्री प्रचुर मात्रा मे मिलने लगी थी परन्तु इसका उपयोग करने के लिए पात्रो का अभाव था। अभी तक मनुष्य के पात्र काष्ठ और

मुक्ति पाने के लिए खेत को दो-तीन फसल के बाद छोड देते थे। कुछ वर्षों मे, जब आसपास की सब भूमि अनुर्वर हो जाती थी तो वह किसी अन्य स्थान पर जा बसते थे। यह विधि आज भी अफ्रीका की बहुत सी जातियाँ और आसाम की नागा जाति अपनाये हुये हैं। परन्तु इस विधि मे कठिनाई बहुत आती है। इसलिये कुछ स्थानो पर भूमि की उर्वरता लौटाने के लिये कृत्रिम उपायो की खोज होने लगी। डेन्यूबियना ने यह खोज की कि अगर खेत मे जगली घास उगने दी जाय और फिर उसे जला दिया जाय तो भूमि की उर्वरता लौट आती है। यूनान और बल्कान-प्रदेश की जातियो ने पशुओ और मानवो के मलमूत्र से भूमि की उर्वरता लौटाने की विधि का आविष्कार किया।

पशुपालन

पशुपालन का आविर्भाव—पश्चिमी एशिया और मडीटेरेनियन-प्रदेश मे रहने वाली जातियाँ कृषि के साथ पशुपालन भी करती थी। यह उद्योग भी तत्कालीन जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनो के कारण अस्तित्व मे आया। जब इन प्रदेशो मे वर्षा कम होने लगी और घास के मैदान रेगिस्तानो मे बदलने लगे तो यहाँ के वन्य पशु और मनुष्य, दोनो ही नखलिस्तानो के समीप रहने के लिए बाध्य हो गये। इनमे बहुत से पशु जैसे, गाय, भैंस, भेड, बकरी तथा सुअर इत्यादि जो घास और चारा खाकर रह सकते थे, मानव आवासो के निकट चककर काटने लगे। इस समय तक मनुष्य इन पशुओ से काफी परिचित हो गया था। वह यह भी समझ गया था कि अगर पशु उसके समीप रहगे तो वह जब चाहे उनका शिकार कर सकता है। इसलिये उसने उनको अपने पास से भगाने के स्थान पर निकट आने के लिये प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया। वह अपने खेत से उत्पन्न चारा उन्हे खाने के लिए देने लगा और हिंस्र प्राणियो से उनकी रक्षा करने लगा। धीरे धीरे ये पशु पूर्णरूपेण उस पर निर्भर रहने लगे। इस प्रकार पशुपालन उद्योग अस्तित्व मे आया।

पहले पशुपालन या कृषि?—मनुष्य ने पहले पशुपालन प्रारम्भ किया या कृषि, इस विषय म विद्वानो मे मतभेद है। बहुत से विद्वान् मानते हैं कि कुछ स्थानो पर पशुपालन और कुछ स्थानो पर कृषि-कर्म साथ साथ आविर्भूत हुए। इसके विपरीत कुछ विद्वानो ने, जिनकी सख्या बहुत कम है, यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पशुपालन का जन्म कृषि से पहले हुआ। परन्तु अधिकाश विद्वान् जिनमे गॉर्डन चाइल्ड भी सम्मिलित हैं, यह विश्वास करते है कि कृषि के अस्तित्व मे आये बिना पशुओ के चारे की समस्या हल नही हो सकती थी इसलिये कृषि-कर्म का उदय पशुपालन के पूर्व हुआ होगा।

पशुपालन के लाभ—नव-पाषाणकालीन आर्थिक व्यवस्था मे पशुपालन का महत्व कृषि से कम नही था। एक तो इससे मनुष्य के भोजन की समस्या बहुत कुछ

सुलभ गई। अब उसे शिकार की खोज में वनों में भटकना आवश्यक नहीं रहा। वह जब चाहे अपने पालित पशुओं को मारकर मांस प्राप्त कर सकता था। दूसरे, वह इनसे खाल और चमड़ा प्राप्त करता था जिनसे वस्त्र, तम्बू और भाण्ड जैसी उपयोगी वस्तुएँ बनती थी। पशुओं के सींगों से औजार, हथियार और आभूषण बनते थे। तीसरे, उसने यह भी खोज की कि जिस खेत में पशु चरते रहते हैं उसमें अच्छी उपज होती है। धीरे-धीरे वह गोबर की खाद की महत्ता को समझ गया। चौथे, उसने भेड़ों से ऊन प्राप्त करके अपनी वस्त्र समस्या को सुलझाया। इसमें कातने और बुनने की कलाएँ अस्तित्व में आई। पाचवे, जब वह पशुओं के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हो गया तो उसने यह जाना कि उनका दूध भोजन के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। पशुओं पर माल लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना यद्यपि उसने अपेक्षाकृत बाद में सीखा, तथापि यह भी पशुपालन का एक अति महत्त्वपूर्ण लाभ था इसमें सन्देह नहीं।

पशुपालन का प्रभाव—प्रारम्भ में पशुपालन से समाज के आर्थिक जीवन में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन पालित पशुओं की संख्या बढ़ जाने पर नई-नई समस्याएं सामने आईं। पशुओं को चराना जंगलों को जलाकर चरागाह बनाना, चारे के लिए विशेष फसल उगाना तथा ऐसे ही अन्य बहुत से कार्य थे जिनके कारण कुछ व्यक्ति अपना सारा समय पशुपालन में ही लगाने लगे। कुछ समूहों के आर्थिक जीवन का मूलाधार पशुपालन ही हो गया।

यहाँ पर यह स्मरणीय है कि नव पाषाणकाल में खाद्य-सामग्री का 'उत्पादन' हुआ, इस का अर्थ यह नहीं है कि पूर्व-पाषाणकाल की फल-मूल और शिकार द्वारा भोजन संग्रह करने की प्रथा एकदम बन्द हो गई। शिकार, मछली पकड़ना तथा फल-मूल का संग्रह इस युग में भी थोड़ा बहुत चलता रहा। लेकिन धीरे धीरे यह कार्य विशिष्ट व्यवसाय बनने लगे। आज भी मछली पकड़कर जीवन व्यतीत करने वाले मछेरे और शिकार करके उदरपूर्ति करने वाले व्याधों का पृथक व्यावसायिक श्रेणियों के रूप में अस्तित्व है।

मृद्भाण्ड कला

मृद्भाण्ड कला का आविष्कार—नव-पाषाणकालीन मानव केवल खाद्य-पदार्थों को अधिक मात्रा में उत्पन्न करके ही सन्तुष्ट नहीं हो गया। उसने कुछ ऐसी वस्तुओं का उत्पादन भी किया जो प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त नहीं होती। इनमें मिट्टी से बरतन, सूत, पटसन और ऊन से वस्त्र और काष्ठ से नाव और कृषि-कर्म सम्बन्धी यन्त्रों का निर्माण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कृषि-कर्म और पशुपालन के कारण खाद्य सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलने लगी थी परन्तु इसका उपयोग करने के लिए पात्रों का अभाव था। अभी तक मनुष्य के पात्र काष्ठ और

पाषाण से बनते थे, परन्तु इनकी सहायता से भोजन पकाना बहुत कठिन था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का आविष्कार किया। यह आविष्कार कब और कैसे हुआ यह कहना कठिन है। हो सकता है किसी समय किसी स्त्री ने यह देखा हो कि मिट्टी से लिपी हुई टोकरी के आग मे जल जाने पर टोकरी के आकार का पकी हुई मिट्टी का बरतन बच रहता है; और इस अनुभव से लाभ उठाकर उसने मृद्भाण्ड बनाने की कला को जन्म दिया हो। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह आविष्कार मध्य-पाषाणकाल मे ही हो गया था परन्तु इतना निश्चित है कि प्रचुर मात्रा मे मिट्टी के बर्तन नव-पाषाण-काल मे ही बने।

कुम्हार की कला की जटिलता—मृद्भाण्ड बनाना एक रासायनिक-प्रक्रिया है। गीली मिट्टी, जिससे बर्तन बनते है, पानी मे घुल जाती है और सुखा लेने के बाद भी आसानी से टूट जाती है। लेकिन जब इसे ६००°C या इससे भी अधिक गर्म अग्नि मे पकाया जाता है तो इसका लसलसापन मिट जाता है और यह लगभग पत्थर के समान कठोर हो जाती है। अब यह न तो पानी मे घुलती है और न बिना जोर लगाये इसे तोड़ा जा सकता है। वस्तुत. कुम्हार की कला का मूल इसी तथ्य मे निहित है कि वह लसलसी मिट्टी को कोई भी आकार दे सकता है और आग मे पकाकर उस आकार को स्थायी बना सकता है।

चित्र ३७ : नव-पाषाणकालीन मृद्भाण्ड

कुम्हार की कला प्रारम्भ से ही बहुत जटिल थी। उसे बर्तन बनाने के लिये

अच्छी मिट्टी का चुनाव करना पडता था जिससे पकते समय बर्तन चटक न जाय। दूसरे शब्दो म उस अच्छी मिट्टी की पहिचान से परिचित होना आवश्यक था। दूसरे उसे यह जानना आवश्यक था कि गीली मिट्टी से बने बर्तनो को पकाने क प्रथम सुखाना होता है। मिट्टी स इच्छित आकार के भाण्डो का निर्माण करना भी कम कठिन नही था। प्रारम्भ मे मनुष्य ने उसी आकार के बर्तन बनाये जिस आकार के उसके पत्थर और लकडी के बर्तन होते थ। धीरे धीरे उसने यह खोज की कि लसलसी मिट्टी से अनेक आकार के बर्तन बनाये जा सकते है। परन्तु उस समय तक चाक (Potters wheel) का आविष्कार नही हो पाया था। इसलिये वह अपनी कल्पना को सदव मूर्तरूप नही द सकता था। चाक के अभाव म वह सुराही और घडा इत्यादि का निर्माण करने के लिए छल्ला विधि (Ring method) का प्रयोग करता था। इसम बर्तन का तला बनाकर उसके ऊपर मिट्टी की छल्लाकार पट्टिया एक दूसरे के ऊपर रखकर जोड दी जाती थी। यह विधि बहुत कठिन थी परन्तु चाक के अभाव म इसके बिना बर्तन बनाना असम्भव था।

बर्तनो के आग मे पक जाने पर मिट्टी का रंग बदल जाता है। यह रंग मिट्टी की किस्म आग की तेजी और पकाने के ढंग तथा अन्य कई बातो पर निर्भर रहता है। नव पाषाणकालीन मनुष्य न यह सीख लिया था कि किस प्रकार बर्तनो को इच्छित रंग दिया जा सकता है। आग की लपट लगने से बरतन काले पड जाते थ। इस कठिनाई को दूर करने के लिए पश्चिमी एशिया म भट्टी (Oven) का आविष्कार हुआ जिसम ९००°C से १०००°C तक ताप देने पर भी धुआं लगकर बर्तन काले नही पडते थ। यूरोप म इस आविष्कार का लाभ लौह-युग के पूर्व नहीं उठाया जा सका।

मृदभाण्ड कला का प्रभाव—प्रारम्भिक मनुष्य के लिए लसलसी मिट्टी का प्रस्तरसम हो जाना जादू से कम नही था। पत्थर स उपकरण बनाते समय मनुष्य केवल वही आकार उत्पन्न कर सकता है जो उसने बड पाषाण-खण्ड म सम्भव हो। यही बात सींग और हड्डियो के साथ है। परन्तु मिट्टी के बर्तन बनाते समय यह बन्धन नही होता। इनके बनाने म मनुष्य अपनी कल्पना से काम ल सकता है। इसीलिए मृदभाण्ड कला ने मनुष्य की विचार शक्ति को बहुत प्रभावित किया।

कातने और बुनने की कला

मिश्र और पश्चिमी एशिया के नव-पाषाणकालीन अवशेषो से पता चलता है कि इस युग म कपडा बुनने की कला का आविष्कार हो गया था। सूत पटसन और ऊन से बने वस्त्र पूर्व-पाषाणकाल के खाल और पत्तियो स बने वस्त्रो का स्थान लेने लग थ। कपडा बुनने की कला भी बहुत ही जटिल है। इसका

आविष्कार अन्य कई आविष्कारों और उपकरणों के अस्तित्व में आये बिना सम्भव नहीं था। सर्वप्रथम इसके लिए एक ऐसे द्रव्य की आवश्यकता होती है जिससे सूत बन सके। मिश्र और यूरोप में इसकी पूर्ति पटसन से की गई। दूसरा द्रव्य कपास था। भारत में इसका प्रयोग ३००० ई० पू० में हो रहा था। लगभग इसी समय मसोपोटामिया में ऊन का प्रयोग हो रहा था। इससे स्पष्ट है कि कपड़ा उद्योग के अस्तित्व में आने के लिए विशिष्ट प्रकार के पशुओं का पालन और उन पौधों की खेती करना आवश्यक था जिनसे उपयुक्त द्रव्य प्राप्त हो सकें। दूसरे वस्त्र निर्माण के लिए आवश्यक था कि सूत कातने के लिए चर्खा और बुनने के
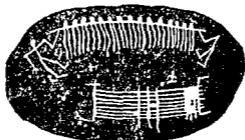
चित्र ३८

लिए कर्घा हो (चित्र ३८)। पुरातत्ववेत्ताओं को उत्खनन में चर्खे के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं। चर्खे का आविष्कार एशिया में नव-पाषाणकाल में ही हो गया था। यह आविष्कार, जिसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है विश्व के महानतम आविष्कारों में से एक है।

काष्ठकला और नये उपकरण

पॉलिशदार उपकरण—हम देख चुके हैं कि नव-पाषाणकाल में यूरोप वनों से आच्छादित था। उत्तरी अफ्रीका पश्चिमी एशिया और उत्तर पश्चिमी भारत का जलवायु भी पूर्व-पाषाणकाल से अधिक शुष्क होने के बावजूद आधुनिक काल से अधिक नम था। इसलिये इन प्रदेशों में वन्य काष्ठ का अब जैसा अभाव न था। नव-पाषाणकालीन मानव ने इस काष्ठ का उपयोग करने के लिये और अपने नये उद्योगों में जिनका हमने ऊपर विवेचन किया है सफलता प्राप्त करने के लिए नये पाषाणोपकरण बनाये। पूर्व-पाषाणकाल के मानव के हथियार और औजार बेडौल और खुरदरे होते थे। परन्तु नव पाषाणकालीन मानव ने रगड़-रगड़ कर चिकने, चमकदार और सुडौल हथियार बनाने की विधि का आविष्कार किया। उनके हथियारों में कठोर पत्थर की पालिशदार कुल्हाड़ी (Polished Stone Axe) प्रमुख है (चित्र ३९)। इसको बनाने के लिए प्रस्तर खण्ड के एक सिरे को घिसकर धारदार बनाया जाता था और दूसरी ओर उसमें लकड़ी या

सीग की मूठ लगा दी जाती थी। इस प्रकार का हथियार पूर्व पाषाणकाल म अज्ञात था। पुराने पुरातत्ववेत्ता इसे नव पाषाणकाल का प्रतीक मानते थे। इससे मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त हो गई कि वह वनो को काट सके और लकडी को चीर सके। इससे काष्ठकला (Carpentry) का विकास हुआ। अब मनुष्य लकडी का उपयोग नाव, मकान और अन्य वस्तुएँ बनाने मे करने लगा। कुल्हाडी

चित्र ३९ नव पाषाणकालीन पॉलिशदार उपकरण

ही परिवर्तित रूप मे युद्धो म काम आने वाली गदा परशु और मुगरी बनी। गदाएँ पश्चिमी एशिया मे गदाकार और उत्तरी अफ्रीका तथा यूरोप मे तश्तरी के आकार की बनती थी। युद्धो मे गदाओ के साथ भाले और धनुष बाण का प्रयोग चलता रहा। भालो और तीरो के पाषाण-निर्मित सिरे सर्वत्र प्रचुरता से मिलते हैं (चित्र ३९)।

अन्य उपकरण—नव पाषाणकालीन मानव का बौद्धिक स्तर पूर्व-पाषाणकालीन मानव से बहुत ऊँचा था। उसने अपने पूर्वजो की भांति पाषाण, सीग, अस्थि और हाथी दाँत इत्यादि से छनी आरी हापून सुई पिन सुआ कुदाली, बर्चे मनके और चाकू इत्यादि का निर्माण ही नही किया वरन् अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अन्यान्य औजार और हथियार भी बनाये। उसने ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाई (चित्र ३४ पृ० ६६) झीलो तथा नदियो को पार करने के लिए नाव का (चित्र ३४, पृ० ६६) आविष्कार किया। फसल काटने के लिए हसिया (चित्र ३५ ४-५) सूत कातने के लिए तकली और चर्खे तथा बुनने के लिए कर्घे का निर्माण किया। वह सम्भवत मिट्टी और लकडी के ढोल भी बनाता था जिन पर पशुओ की खाल चढ़ी होती थी। रीड की शाखा मे सीटियाँ बनाने की कला भी उसे ज्ञात थी।

नवीन आविष्कारो का प्रभाव

जनसख्या में वृद्धि—ऊपर हमने नव पाषाणकाल म किये गये जिन आविष्कारो

का विवेचन किया है, उन्होंने मानव जीवन मे एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। पूर्व-पाषाण काल मे, जो कई लाख वर्ष तक चला मनुष्य सदैव प्रकृति पर निर्भर रहा। वह केवल उन्ही पशुओ का शिकार कर सकता था जो उसे वनो मे मिल जाते थे और उन्ही फलो और कन्द-मूलो का सग्रह कर सकता था जो वन्यावस्था मे उत्पन्न होते थे। इससे दो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थी। एक तो जनसख्या उससे अधिक नही बढ पाती थी, जितनी की उदरपूर्ति उपलब्ध वन्य पशुओ और फल मूलो से हो सकती थी। दूसरे, यदि किसी प्रदेश मे किसी समय जलवायु मे परिवर्तन हो जाता था और उस जलवायु मे पोषित होने वाले पशु और फलमूल विलुप्त हो जाते थे तो वहाँ के मानव समूहो को अपना अस्तित्व बनाये रखना असम्भव हो जाता था। मैग्डेलेनियनो के साथ, जो पूर्व पाषाणकाल की सर्वाधिक सुसस्कृत जाति थी, यही हुआ (पृ० ६१)। नव पाषाणकाल मे मनुष्य ने प्रथम बार यह ज्ञान प्राप्त किया कि किस प्रकार कृषि और पशु-पालन के द्वारा प्रकृति को उससे अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया जा सकता है जितनी वन्यावस्था मे उत्पन्न होती थी। अब किसी ग्राम के निवासियो को जनसख्या बढ जाने पर केवल दो-चार अतिरिक्त खेतो मे फसल पैदा करनी पडती या पालित पशुओ की सख्या बढानी होती थी। इस व्यवस्था की सफलता का सबसे सबल प्रमाण नव-पाषाणकाल मे जनसख्या मे वृद्धि होना है। इस काल के मानव समूह पूर्व-पाषाणकाल और मध्य-पाषाणकाल के मानव समूहो से बडे और सख्या मे अधिक थे। दूसरे, इस काल मे मानव का निवास उन प्रदेशों मे भी दिखाई देता है जहाँ पूर्व पाषाणकाल मे या तो उसका अस्तित्व बिल्कुल न था और यदि था तो बहुत कम सख्या मे। तीसरे पूर्व-पाषाण काल के अस्थिरक्षित मानव अवशेषो की सख्या कुछ ही सौ है जबकि नव-पाषाण काल के अवशेष सहस्रो की सख्या म उपलब्ध होते है। नव-पाषाणकाल मे जन-सख्या मे वृद्धि होने म एक और तथ्य से सहायता मिली। पूर्व-पाषाणकाल मे बच्चे आर्थिक दृष्टि से भार थे। वे शिकार म तो सहायता कर नहीं सकते थे, उल्टे अपनी उदरपूर्ति के लिए भोजन की माग करते थे। नव-पाषाणकाल म बच्चों का होना लाभप्रद हो गया। वे पशुओ को चरागाहो मे ले जा सकते थे, उनकी देखभाल कर सकते थे और इसी प्रकार कई प्रकार से परिवार की आर्थिक गतिविधि म हाथ बँटा सकते थे।

स्थायी जीवन का प्रारम्भ—बहुधा यह विश्वास किया जाता है कि पूर्व-पाषाणकाल मे मनुष्य शिकार की खोज मे घूमता-फिरता रहने के कारण खाना-बदोश (यायावर) था, परन्तु नव-पाषाणकाल म कृषि-कर्म प्रारम्भ करते ही स्थायी रूप से घर बनाकर रहने लगा। यह विश्वास भ्रामक है। आखेट का यायावर होने से और कृषि-कर्म का स्थायी जीवन अनिवार्य रूप से कोई निश्चित सम्बन्ध

नही है। मैग्डेलेनियन शिकारी थे, परन्तु निश्चित रूप से कई सन्ततियो तक एक ही गुफा मे निवास करते रहते थे। दूसरी ओर नव पाषाणकाल मे, कम-से-कम उन प्रदेशो मे, जहाँ भूमि की उर्वरता दो तीन फसल के बाद कम हो जाती थी मनुष्य को कृषि-कर्म करते हुए भी यायावर जीवन व्यतीत करना पडता था। फिर भी यह सत्य है कि उन प्रदेशो मे जहाँ की भूमि की उर्वरता प्रतिवर्ष बाढ आने के कारण सदैव बनी रहती थी और जहाँ मनुष्य ने खाद देकर उर्वरता लौटाने की विधि ढूंढ निकाली थी वहाँ वह घर बनाकर स्थायी जीवन व्यतीत कर सकता था और करता था।

मकानों के प्रकार—पूर्व-पाषाणकालीन मानव घर बनाना नही जानता था। उसका आश्रय-स्थान गुफाएँ थी। लेकिन नव-पाषाणकालीन मानव ने सीढी, घिरनी (Pulley) और चूल (Hinge) इत्यादि का आविष्कार कर लिया था। इससे उसे रहने के लिए स्थायी मकान बनाने मे बहुत सहायता मिली। मिश्र मे मकान बनाने मे रीड (नरकुल) का प्रयोग होता था (चित्र ४०)। पश्चिमी एशिया और यूरोप म घर प्रारम्भ मे मिट्टी और टट्टर तथा बाद मे कच्ची ईंटों के बनाये जाते थे। ये बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते थे। स्वीट्जरलैण्ड में झीलो पर बनाय गये मकान विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं (चित्र ३४, पृ० ६६)। इन मकानो के अवशेष १८५४ ई० मे जब असाधारण गर्मी पडने के कारण झीलो का पानी बहुत सूख गया, प्रकाश मे आये। ये मकान लकडी के लट्ठो को झील के पानी मे गाड कर बनाये गये थे। इनमे आने जाने के लिए सीढियो का प्रबन्ध था। इनकी दीवारो को टट्टर पर मिट्टी का प्लास्टर करके और छत को भूसे छाल और रीड (नरकुल) से बनाया गया था। इसके निर्माता निश्चित रूप से कुशल बढई रहे होगे। ऐसे जलगृह फ्रास स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड इटली, रूस, दक्षिणी और उत्तरी अमरीका तथा भारत मे भी प्राप्त हुए हैं। आजकल भी जावा सुमात्रा और न्यूगिनी मे इनका प्रचलन है। सुरक्षा और सफाई की दृष्टि से निश्चित रूप से ये मकान बहुत उत्तम थे।

चित्र ४० प्रागैतिहासिक मिश्र की रीड की एक झोपडी का चित्र

सामूहिक जीवन

ग्रामों की योजना—नव-पाषाणकालीन मानव छोटे-छोटे ग्रामो मे रहते थे। इनका क्षेत्रफल प्राय डेढ एकड से दस एकड तक होता था। जरिको ग्राम

(प्रथम स्तर) का क्षेत्रफल ८ एकड था। एक ग्राम मे साधारणत आठ-दस से लेकर तीस-पैंतीस तक घर होते थे। इनके निवासियों को सडकें और गलियाँ मिल-जुलकर बनानी पडती थीं। बहुधा ग्राम को सुरक्षा की दृष्टि मे खाई या चहारदिवारी से घेर दिया जाता था। जेरिको ग्राम की खाई २७ फुट चौडी और ५ फुट गहरी थी। *खाइयों का निर्माण भी गाँव के व्यक्ति सामूहिक रूप से* करते होंगे। मकान, सडको और गलियों के दोनो ओर व्यवस्थित योजना के अनुसार बनाये जाते थे। यह भी उनकी सामाजिक-जीवन की विकसित अवस्था का प्रमाण है।

स्त्रियो और पुरुषों में श्रम विभाजन—नव-पाषाणकालीन समाज मे स्त्रियों और पुरुषो मे *श्रम-विभाजन (Division of Labour) हो गया था।* जैसा कि हमने देखा है इस काल के अधिकाश आविष्कार स्त्रियो ने किये थे। उन्ही को कृषि-कर्म, मृद्भाण्ड कला कताई और बुनाई के आविष्कारों का श्रेय प्राप्त है। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि उन्हे अधिकांश पारिवारिक कार्यों को स्वय करना होता था। उन पर खेत जातने, आटा पीसने, खाना बनाने, सूत कातने कपडा बुनने तथा आभूषण और बरतन इत्यादि बनाने का उत्तरदायित्व था। पुरुष खेती के काम मे स्त्रियो की सहायता करते थे तथा पशुओं का पालन और शिकार करते थे। औजार और हथियार भी वही बनाते थे। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक कार्य करना पडता था। परन्तु इसके बदले मे वे सामूहिक जीवन मे प्रमुख भाग लेती थी। समाज की व्यवस्था मातृसत्तात्मक (Matriarchal) थी। विशेषत जिन समूहो मे कृषि-कर्म प्रमुख उद्यम था, स्त्रियों को समाज मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परन्तु जिन स्थानो पर पशुपालन प्रमुख उद्यम था, वहाँ पुरुषों को अधिक सत्ता मिली हुई थी।

परिवारों और ग्रामों की आत्म निर्भरता—स्त्रियो और पुरुषो मे श्रम विभाजन हो जाने पर भी समाज मे सम्मिलित रूप से औद्योगिक विशिष्टीकरण (Specialisation of Industries) नही हो पाया था। प्रत्येक परिवार को आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु, खाद्य-सामग्री, मृद्भाण्ड, कपडा, औजार, हथियार इत्यादि स्वय उत्पन्न करनी या बनानी होती थी। परिवार के समान गाँव भी आत्म निर्भर होते थे। गाँव के सब व्यक्तियों को आवश्यक खाद्य-सामग्री तथा पाषाण-खण्ड लकडी और अन्य वस्तुएँ स्वय जुटानी पडती थी। गावो की आत्म निर्भरता और विशिष्टीकरण का अभाव नव पाषाणकालीन समाज की आर्थिक-व्यवस्था की विशेषता है। इसका प्रमुख *कारण था तत्कालीन युग मे यातायात के साधनो का अभाव। गाडियो के अभाव* मे स्त्रियाँ माल ढोने का कष्टकर कार्य करती थी इसलिये एक गाँव से दूसरे गाँव को माल भेजना आसान कार्य नही था। दूसरे, नव-पाषाणकालीन ग्राम बहुधा घने जगलो, नखलिस्तानो या पहाडो की घाटियो मे अवस्थित थे। इसलिये उनका

आवश्यक वस्तुओं के लिये पराश्रित रहना असम्भव था। परन्तु आत्मनिर्भरता का अर्थ पारस्परिक सम्पर्क का अभाव नहीं है। नव-पाषाणकालीन संस्कृति के मूल तत्त्वों की समस्त विश्व में समरूपता और मेडीट्रेनियन समुद्र से प्राप्त होने वाली कौडियों का मध्य यूरोप में प्रयोग इसका प्रमाण हैं। परन्तु यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इस प्रकार का सम्पर्क अथवा आदान प्रदान उनकी आर्थिक व्यवस्था का आवश्यक अंग नहीं था। इससे तत्कालीन ग्रामों की आत्म निर्भरता में कोई कमी नहीं आती।

सामाजिक संगठन—नव-पाषाणकाल में सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने वाली शक्ति क्या थी, यह कहना बडा कठिन है। सम्भवतः उनकी सामाजिक-संगठन की इकाई 'कबीला' था और हर कबीले का एक चिह्न (Totem) होता था जिसे कबीले के सदस्य अपना आदि-पूर्वज मानते थे। मिश्र में जब नव-पाषाणकालीन ग्राम, कांस्यकाल के प्रारम्भ में, नगरों में परिणत होते हैं तो उनके नाम हाथी या बाज जैसे किसी पशु या पक्षी के नाम पर रखे हुये मिलते हैं। यह अनुमान करना असंगत नहीं है कि नव-पाषाणकाल में हाथी और बाज उन ग्रामों के कबीलों के टॉटम (Totem) रहे होंगे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इस युग में 'राजा' भी अस्तित्व में आने लगे थे। कुछ स्थानों पर साधारण मकानों के बीच में एक बड़ा मकान मिला है जो वहाँ के राजा का महल हो सकता है परन्तु इसे निश्चयपूर्वक कहना असम्भव है। हो सकता है कि ये बड़े मकान उन गाँवों के 'पंचायत-घर' मात्र हों।

कला और धर्म

भूमि की उर्वरता से सम्बन्धित धार्मिक विश्वास—मृद्भाण्डों के अतिरिक्त नव-पाषाणकाल की कलाकृतियाँ बहुत थोडी है। पूर्व-पाषाणकाल के गुहा चित्रों की तुलना में रखी जा सकने वाली कृतियों का तो सर्वथा अभाव है। परन्तु मिश्र, सीरिया ईरान दक्षिण-पूर्वी यूरोप और मडीट्रनियन प्रदेश से मिट्टी, पत्थर और अस्थियों की नारी-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ मातृ शक्ति सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो सकती हैं। शायद उनका विश्वास था कि पृथिवी जिसके वक्ष से अन्न उत्पन्न होता है नारी के समान है। उसे भेंट देकर तथा पूजकर सन्तुष्ट किया जा सकता है। सम्भवतः उनका यह भी विश्वास था कि उसे तन्त्र-मन्त्र और सादृश्यमूलक जादू (Sympathetic magic) से वश में किया जा सकता है। इसलिए वे उसकी मूर्तियों में नारी-रूप में चित्रण करते थे। बहुत से प्रदेशों में उत्पादन प्रक्रिया में पुरुष पर अधिक बल दिया जाता था। इसका प्रमाण अनातोलिया, बल्कान प्रदेश और इंगलैण्ड से प्राप्त मिट्टी और पाषाण की शिश्न मूर्तियाँ हैं।

उपर्युक्त मत का समर्थन एक और तथ्य से भी होता है। प्रारम्भिक सभ्यताओं में, नव-पाषाणकाल के फौरन बाद, बहुधा एक कृषि-नाटक (Fertility Drama) खेला जाता था, जिसमें एक राजा और रानी का विवाह होता था। उनका 'औपचारिक सहवास' (Ceremonial Union of Sexes) प्रकृति की उर्वरता और अन्न की उत्पत्ति का प्रतीक और प्रेरक माना जाता था। इसमें प्रधान पात्र 'अन्नदेव' (Corn King) होता था। जिस प्रकार अन्नोत्पादन में पहले बीज 'मरता' है अर्थात उसे भूमि में गाड़ दिया जाता है, इसी प्रकार इस नाटक में 'राजा' को 'मरना' होता था। उसके बाद बीज से जिस प्रकार नया अन्न उत्पन्न होता है, उसी प्रकार नये 'राजा' का 'आविर्भाव' होता था। यह सर्वथा सम्भव है इन नाटकों का विकास नव-पाषाणकाल में पश्चिमी एशिया और पूर्वी मडीट्रेनियन प्रदेश की जातियों द्वारा बीज बोने के अवसर पर दी जाने वाली नरबलि की प्रथा से हुआ हो। फ्रेज़र के अनुसार कृषि-कर्म के आदिकाल में बीज बोने के समय नरबलि देने की प्रथा लगभग सभी स्थानों पर प्रचलित थी।

मृतक-संस्कार और बृहत्पाषाण—अधिकांश नव-पाषाणकालीन समूह अपने मृतकों को *कब्रिस्तानों या घरों में गाड़ते थे और उनके साथ मृद्‌भाण्ड, हथियार* और खाद्य-सामग्री रख देते थे।[1] वे इस संस्कार में पूर्व-पाषाणकालीन मानवों से अधिक सावधानी बरतते थे। सम्भवतः उनका विश्वास था कि अन्नोत्पत्ति का मृतकों से कुछ सम्बन्ध होता है। मडीट्रेनियन प्रदेश में मृतक के लिये उसके मकान का भूमिगत लघु प्रतिरूप बनाया जाता था। उत्तर और पश्चिमी यूरोप में मृतकों के प्रति आदर प्रकट करने के लिए स्मारक के रूप में मेगेलिथ या बृहत् पाषाण (Megaliths या Great stones) खड़े किये जाते थे (चित्र ४१, ४२), विशेषतः स्कैन्डीनेविया, ब्रिटेन और दक्षिणी इंगलैण्ड में। इनके बनाने में निश्चितरूप से भारी श्रम करना पड़ता होगा। यूरोप में पाषाण समाधियों का सबसे प्राचीन रूप डॉलमेन (Dolmen या Table Rock) कहलाता है। इसमें कई पाषाण स्तम्भों पर एक समतल शिला उसी प्रकार रख दी जाती थी जिस प्रकार मेज के चारों पायों पर तख्ता रखा होता है, इस प्रकार बने पाषाण-कक्ष में अस्थि अवशेष रख दिये जाते थे। बहुधा डॉलमन को मिट्टी के ढेर से, जिसे टमलस (Tumulus) कहा जाता है ढक दिया जाता था। *टमलस् और डॉलमन को सम्मिलित रूप से बरो (Barrow) कहा जाता* है। ब्रिटेन (Briton) में बहुधा एक ही पाषाण स्तम्भ खड़ा किया जाता था। इसे मोनोलिथ (Monolith) या मेनहिर (Menhir या Long stone) कहते हैं। मे

१ उत्तरी इटली में बहुत सी गुफाओं में मृतकों की अस्थियों के समीप खण्डित पाषाणोपकरण मिले हैं। इन उपकरणों को जानबूझकर तोड़ा गया है। सम्भवतः उनका विश्वास था कि इस प्रकार तोड़ने से उपकरण 'मर' जाते हैं और उनकी आत्मा मृत व्यक्ति के साथ चली जाती है।

छोटे और बड़े, सादे और चित्रित सभी प्रकार के मिलते हैं (चित्र ४०)। ये उसी प्रकार के पाषाण है जैसे आजकल समाधियों पर स्मारक रूप मे खड़े किये जाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि नव-पाषाणकालीन मानव उनमे आत्मा का निवास मानते थे। मेनहिरों को बहुधा पंक्ति-बद्ध रूप मे भी खड़ा किया जाता था। उस अवस्था मे इन्हें एलायनमेन्ट (Alignment) कहते हैं। जिन मेनहिरों को विशिष्ट धार्मिक उत्सव मनाने के लिए पाषाण-खण्डों के घेरे म स्थापित किया गया है, उन्हें क्रोमलेच् (Cromlech) कहा जाता है।

चित्र ४१ नव-पाषाणकाल का एक चित्रित मेनहिर

जादू-टोना—नव-पाषाणकालीन जातियाँ जादू-टोने मे भी विश्वास करती थी। मरिम्द म पाषाण की लघु कुल्हाड़ी मिली है जिसमे छेद बना हुआ है। यह गले म तावीज के रूप मे पहिनी जाती होगी। उनका यह विश्वास रहा होगा कि इस प्रकार लघु अस्त्र शस्त्रों को तावीज रूप मे पहिनने से उनकी मन्त्र शक्ति पहिनने वाले को मिल जाती है।

ज्ञान-विज्ञान

नव-पाषाणकालीन मानव का ज्ञान विज्ञान पूर्व पाषाणकालीन मानव से बहुत

समुन्नत था। शताब्दियों के अनुभवों और प्रयोगों द्वारा उन्हें बहुत सी नई बातें मालूम हो गई थीं। मिट्टी पकाने का रसायन-शास्त्र, खाना पकाने का जीव रसायन-शास्त्र तथा बहुत सी वस्तुओं के उत्पादन के कृषि-शास्त्र से अब वे परिचित हो गये थे। उनको शरीर की संरचना का भी थोड़ा बहुत ज्ञान था, क्योंकि कुछ अस्थियों में ऐसे चिह्न मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि उन्हें टूटने के बाद जोड़ा गया है। कृषि का जलवायु और ऋतुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इनका पूर्व ज्ञान प्राप्त करने में सूर्य, चाँद और सितारों से बहुत सहायता मिलती है। नव-पाषाणकाल के मनुष्य ने इस दिशा में पग उठाना आरम्भ कर दिया था। उदाहरण के लिए मिस्र के निवासी नव-पाषाणकाल के अन्त तक यह खोज कर चुके थे कि सीरियस नक्षत्र (Sirius) उसी समय निकलता है, जिस समय नील नदी में बाढ़ आती है। कालान्तर में यह विश्वास किया जाने लगा कि नील नदी में बाढ़ सीरियस नक्षत्र के कारण आती है। इसी से मिलते-जुलते अनुभवों से यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि सितारे मनुष्य की गतिविधि को नियन्त्रित करते हैं। यह ज्योतिष का मूल सिद्धान्त है। ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में ऐसे विचार यूरोप और एशिया में मिलते हैं। सम्भवतः इनका बीज नव-पाषाणकाल में पड़ा। स्नोदर नामक विद्वान् का तो यह विश्वास है कि कुछ स्थानों पर मेगेलिथों का क्रम नक्षत्रों की गतिविधि के अनुसार निश्चित किया गया है। यदि तत्कालीन युग में ज्योतिष और खगोल विद्या की इतनी प्रगति हो चुकी थी, तो यह अनुमान करना भी असंगत न होगा कि सूर्य, चाँद और सितारों से सम्बन्धित आख्यान, जो ऐतिहासिक युग के उपरान्त में प्रचलित थे, नव-पाषाण काल में जन्मे होंगे। परन्तु इन सब अनुमानों को प्रमाणित करना ज्ञान की वर्तमान अवस्था में असम्भव है।

पाषाणकालीन मानव की उपलब्धियाँ

नव-पाषाणकाल के अन्त तक मानव सभ्यता के लगभग सभी आधार-स्तम्भों का निर्माण हो चुका था। अग्नि, आवश्यक हथियार और औजार, मृद्भाण्ड, कृषि, पशुपालन, वस्त्र और मकान इत्यादि सभी वस्तुएँ जो आज भी मनुष्य के लिए अपरिहार्य हैं अस्तित्व में आ चुकी थीं। मैग्डेलेनियन काल में मनुष्य कला के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व प्रगति कर चुका था। लिपि (Script), धातु (Metal) तथा राज्य (State) को छोड़कर, जिनका जन्म ताम्रयुग में हुआ, मनुष्य ने ये सभी आविष्कार कर लिये थे जिनके आधार पर मानव-सभ्यता के भव्य भवन का निर्माण किया जा सका। आर्थिक दृष्टि से भी नव-पाषाणकालीन क्रान्ति महान् रही। कृषि और पशुपालन के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति को काफी सीमा तक अपने नियन्त्रण में कर लिया। आधुनिक काल में औद्योगिक क्रान्ति को छोड़कर मानव जीवन में कोई ऐसी उथल-पुथल नहीं हो पायी है जिसकी तुलना नव-

पाषाणकालीन क्रान्ति से की जा सके। एक प्रकार से इसे मानव सभ्यता की भावी प्रगति की आधार शिला कहा जा सकता है।
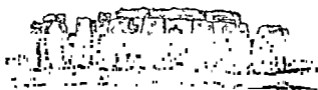
ऊपर दिया गया चित्र इंगलैण्ड के स्टोनहेन्ज नामक स्थान से प्राप्त 'बृहत्पाषाण' का है। यहाँ पाषाण-खण्डों से १०० फुट व्यास का एक घेरा निर्मित किया गया है। यह एक गली द्वारा पास ही स्थित एक नव-पाषाणयुगीन ग्राम से सम्बद्ध है।

· ९

ताम्र-प्रस्तरकाल

नव-पाषाणकालीन आर्थिक व्यवस्था के दोष और ताम्रकालीन आविष्कार

नव पाषाणकालीन व्यवस्था के दोष—नव-पाषाणकालीन आर्थिक-व्यवस्था कम-से-कम तात्कालिक दृष्टि से पूर्णत सफल रही। मनुष्य, जो पूर्व-पाषाण-काल मे उदरपूर्ति के लिए प्रकृति की कृपा पर निर्भर था, अब कृषि और पशु-पालन के द्वारा आवश्यक खाद्य-सामग्री स्वय उत्पन्न करने लगा। परन्तु दीर्घकालिक दृष्टि से इस व्यवस्था मे दो प्रमुख दोष थे। एक, इससे बढती हुई जनसख्या की समस्या स्थायी रूप से हल नही हो पायी। उस काल मे इस समस्या का एक-मात्र हल खेती के लिए नयी भूमि और पशुओ के लिए नये चरागाह ढूँढना था। प्रारम्भ मे यह कार्य अत्यन्त सरल था। जब किसी ग्राम की जनसख्या बढ जाती थी तो वहाँ के निवासियो का एक भाग पडौस म नया ग्राम बसा लेता था या नये चरागाह ढूढ लेता था। लेकिन भूमि का विस्तार सीमित है। एक समय ऐसा आया जब नये खेत और चरागाह मिलने बन्द हे गये। कुछ जातियो ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए अन्य जातिया के खेतो और चरागाहो को बलपूर्वक छीनना प्रारम्भ किया। परन्तु यह स्पष्ट है कि पारस्परिक छीना झपटी

ऊपर दिये हुये चित्र मे, जो मिस्र के पिरेमिड युग के एक सामन्त की समाधि से लिया गया है, कृषको को हल चलाते हुये दिखाया गया है। द्रष्टव्य है कि जुआ (Yoke) बैलो के कन्धो के बजाय सीगो पर रखा हुआ है। इस प्रकार के हल का आविष्कार उस युग मे प्रचलित कुदालियो से हुआ होगा (चि० ४५, पृ० ६२)।

मे बढती हुई जनसंख्या और सीमित भूमि की समस्या हल नही हो सकती थी। दूसरी समस्या परिवारो और ग्रामो की आत्म निर्भरता के कारण उत्पन्न हुई। ग्रामो मे पारस्परिक सम्बन्ध के अभाव तथा कृषि सम्बन्धी ज्ञान और उपकरणो की आदिम अवस्था के कारण नव-पाषाणकालीन मानव अधिक से अधिक उतनी खाद्य-सामग्री उत्पन्न करते थे और कर सकते थे जितनी उनके परिवार के लिये यथेष्ट होती थी। वे किसी समय भी बाह्य सहायता की अपेक्षा नही कर सकते थे। इसका परिणाम यह होता था कि किसी वर्ष भूकम्प, अनावृष्टि, अतिवृष्टि या तूफान जैसे प्राकृतिक सकट आने पर वे नितान्त असहाय हो जाते थे। अगर ये प्रकोप दो तीन वर्ष चल जाते थे तो उनका अन्त ही हो जाता था।

नये आविष्कार—इन दोनो समस्याओ को सुलझाने के लिये उतनी ही भूमि मे अधिक खाद्य सामग्री उत्पन्न करना और नव पाषाणकाल के बिखरे हुए ग्रामो मे पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक था, जिससे सकट पडने पर एक ग्राम दूसरे की सहायता ले सके। नव-पाषाणकाल के पश्चात् मनुष्य ने अनेकानेक आविष्कारो द्वारा इस कार्य मे सफलता पाने का प्रयास किया। सम्भवत विश्व इतिहास मे ५००० ई० पू० से ३००० ई० पू० तक जितने महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए उतने आधुनिक वैज्ञानिक युग को छोडकर कभी नही हुए। गार्डन चाइल्ड के अनुसार इनमे निम्नलिखित १६ आविष्कार विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है ताम्र का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिए प्रयोग, पशुओ का भार वाहक के रूप मे प्रयोग पालदार नाव, पहियेदार गाडी और हल का आविष्कार, नहरो द्वारा कृत्रिम सिंचाई-व्यवस्था, फलो की खेती, शराब बनाने का आविष्कार, काँस्य का उत्पादन और प्रयोग, ईंट और महराब बनाने तथा काचन क्रिया (Glazing) की विधि की खोज, सौर-पचाङ्ग, मुद्रा, लिपि तथा अको (Numeral notation) का आविष्कार। पुरातात्त्विक दृष्टि से इनमे ताम्र का प्रयोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिये पुरातत्त्ववेत्ता इस काल को ताम्रकाल कहते हैं।

ताम्र काँस्य और नगर क्रान्ति—ताम्रकाल मे हल के प्रयोग के कारण उत्पादन बढ जाता है तथा बढती हुई आबादी की समस्या कुछ समय के लिये सुलझ जाती है। इसलिये नव-पाषाणकालीन ग्राम शनै शनै बड़े हो जाते हैं परन्तु बड़े होने के साथ-ही-साथ उनकी आत्म निर्भरता समाप्त होने लगती है और सामाजिक सगठन मे कुछ जटिलता आने लगती है। पहियेदार गाडियो और पशुओ का भार-वाहक के रूप मे प्रयोग होने के कारण उनका पृथक्त्व टूटने लगता है। परन्तु इतना होने पर भी ताम्र के साथ साथ पाषाणोपकरणो का प्रयोग चलता रहता है और ग्रामो का आकार बढ़ जाने पर भी वे नगरो के रूप मे परिणत नही होते। इस

युग मे ताम्र और पाषाणोपकरणो का प्रयोग साथ-साथ होता रहा इसलिये कभी कभी इसे ताम्र-पाषाण युग (Chalcolithic Age) भी कहा जाता है। ताम्र काल के अन्त मे, अर्थात चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० मे, मनुष्य खाद्य-सामग्री की समस्या को हल करने के लिए एक और प्रयोग करता है और वह है नदियो की घाटियो की उर्वर भूमि को कृषि के योग्य बनाना। वह इन घाटियो मे स्थित दलदलो को सुखाता है और कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था के लिये नहरें तथा बाँध बनाता है। इन कार्यों को छोटे-छोटे ग्रामो के निवासी नही कर सकते थे इसलिये मनुष्य को स्वय को, विशाल समूहो—नगरो—मे सगठित करना आवश्यक हो जाता है। लगभग इसी समय वह कांस्य के उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि का आविष्कार कर लेता है। दूसरे शब्दो मे काँस्यकाल और नगर-सभ्यताओं का उदय साथ-साथ होता है। सुविधा की दृष्टि से हम इस अध्याय मे केवल ताम्रकालीन आविष्कारो तथा मानव जीवन पर उनके प्रभावो का अध्ययन करेंगे। काँस्यकाल और नगर-क्रान्ति का अध्ययन अगले अध्याय मे किया जाएगा।

ताम्रकालीन उपनिवेश

ताम्रकालीन संस्कृति का उदय स्थल—ताम्रकाल का प्रादुर्भाव उस विशाल भूभाग मे हुआ जो मिश्र और पूर्वी मेडीट्रनियन प्रदेश से भारत मे सिन्धु नदी की घाटी तक विस्तृत है (मानचित्र ३)। इसमे नील नदी की घाटी, एजियन प्रदेश, एशिया माइनर, सीरिया, पलेस्टाइन, असीरिया, बैबिलोनिया ईरान, अफगानिस्तान तथा उत्तर पश्चिमी भारत आते है। यह प्रदेश अपेक्षाकृत शुष्क है तथापि ऐतिहासिक युग के पूर्व यहाँ अब से अधिक वर्षा होती थी। इसका बहुत सा भाग पर्वतो और रेगिस्तानो द्वारा घिरा हुआ है परन्तु बीच-बीच मे नदियो की घाटियाँ और हरे-भरे नखलिस्तान है। यही पर नव-पाषाणकालीन ग्राम-सभ्यता का उदय हुआ था। ताम्रकालीन पुरातात्त्विक अवशेष भी सर्वप्रथम इन्ही नखलिस्तानो और घाटियो मे अवस्थित नव-पाषाणकालीन ग्रामो के ऊपरी स्तरों से प्राप्त होते हैं।

मिश्र के उपनिवेश—सिन्धु प्रदेश के प्रागैतिहासिक युग पर प्रकाश डालने वाले बहुत कम अवशेष प्राप्त है परन्तु ईरान, बैबिलोनिया असीरिया, सीरिया, पेलेस्टाइन, मिश्र और क्रीट से प्राप्त साक्ष्यो की सहायता से ताम्रकालीन सभ्यता के विकास की प्रमुख अवस्थाओं का अध्ययन किया जा सकता है। मिश्र मे ताम्रकाल के प्राचीनतम स्तरो को बदरियन (Badarian) और अम्रातियन (Amratian) कहा जाता है। इनके निर्माताओ का रहन-सहन नव-पाषाण-कालीन था। वे ताम्र से परिचित थे परन्तु इसको ढालकर उपकरण बनाने की विधि का आविष्कार नही कर पाये थे। वे सम्भवत इस लोक से अधिक परलोक

	सिन्धु प्रदेश
तृतीय	झूकर
	हड़प्पा
द्वितीय	अमरी
प्रथम	

की चिन्ता करते थे। उनकी समाधियो मे बहुमूल्य उपकरण और आभूषण मिलते हैं। इनको बनाने के लिये वे विदेशो से बहुमूल्य पाषाणा का आयात करते थे। कालान्तर मे इसी प्रवृति के कारण मिश्र मे पिरेमिडो का निर्माण हुआ। आगामी सस्कृति मे, जिसे पुरातत्त्ववेत्ता गरजियन (Gerzean) कहते है, ताम्र को ढालकर उपकरण बनाने की विधि का आविष्कार हो जाता है। इस युग मे मिश्र के निवासी मेसोपोटामिया के घनिष्ठ सम्पर्क मे आये। इस युग की समाधियाँ विशालतर और सुन्दर हैं तथा उनमे मिलने वाले अवशेष भी अधिक मूल्यवान और कलात्मक हैं।

चित्र ४४

पश्चिमी एशिया और ईरान के उपनिवेश—हम देख चुके हैं कि ईरान मे सियालक की प्रथम स्तर तथा मेसोपोटामिया मे अन्य स्थानो से प्राप्त तत्कालीन अवशेष नव-पाषाणकाल के हैं। सियालक का द्वितीय स्तर तथा सीरिया तथा असीरिया के द्वितीय स्तरों के अवशेषो की सस्कृति भी मूलत नव-पाषाणकाल की है परन्तु कुछ परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। कौडिया, सीपिया और मूल्यवान प्रस्तरो का आयात-निर्यात बढ जाता है। मकान बनाने मे मिट्टी की कच्ची ईंटा और मृद्भाण्डा के लिए भट्टी का प्रयोग होन लगता है। ताम्र का उपयोग भी प्रारम्भ हो जाता है परन्तु इसको पिघलाकर और साँचो मे ढालकर उपकरण बनाने की विधि अभी तक अज्ञात है। केवल धातु को कूटपीटकर इच्छित रूप देने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस काल मे स्त्रियो पुरुषो मे तावीज पहिनने की प्रथा बढ जाती है। देवताओ के लिए मदिर बनवाये जाने लगते हैं। सुमर मे इरिडू नगर मे इया का प्राचीनतम मन्दिर सम्भवत इसी युग का है। पुरातत्त्ववेता इस युग को तैल हलफ (Tell Halaf) के नाम पर हलफियन (Halafian) कहते हैं। यह स्थूल रूप से मिश्र की बदरियन सस्कृति का समकालीन माना जा सकता है। अगले युग म जिसमे सियालक का तृतीय स्तर और मेसोपोटामिया तथा सीरिया की अल उबेद (al Ubaid) सस्कृति आती हैं यद्यपि पाषाण उपकरणो का प्रयोग चलता रहता है, तथापि ताम्र को पिघलाने और ढालकर उपकरण बनाने की कला का आविष्कार हो जाता है। कुम्हार चाक का प्रयोग करने लगते हैं और व्यापारी सम्पत्ति पर अधिकार प्रदर्शित करने के लिए मुद्राओ का। सुमेर मे मृद्भाण्ड हाथ मे बनाने की प्रथा चलती रहती है, परन्तु देवताओ के पुराने मन्दिरा के स्थान पर बडे मन्दिर बनाये जाने लगते है। अल उबेद सस्कृति मिश्र की अम्रातियन सस्कृति की समकालीन प्रतीत होती है। सम्भवत इस समय इससे मिलती-जुलती सास्कृतिक अवस्था एजियन प्रदेश, एशिया माइनर,

तथा उत्तर-पश्चिमी भारत में भी चल रही थी। अगले युग में सियालक का चतुर्थ स्तर असीरिया की तेपगावरा (Tepe Gawra) और सुमेर की जम्देतनस्र (Jamdet Nasr) संस्कृतियाँ आती है। ये मिश्र की गरजियन संस्कृति की समकालीन मालूम होती है। इस युग मे ताम्रकालीन ग्राम जिनका आकार नव पाषाणकालीन ग्रामो से पहले ही काफी बड़ा हो चुका था, धीरे धीरे छोटे-छोटे क़स्बा और नगरो मे परिणत होने लगते हैं। असीरिया के इस काल के क़स्बे बहुत छोटे थे, परन्तु इनके निवासी आग में पकी ईंटों और कॉंस्य का थोड़ा बहुत प्रयोग करने लगे थे। सियालक चतुर्थ और सुमेर म इस युग मे बड़े-बड़े नगर, जिनके निवासी लिपि और कॉंस्य से परिचित थे तथा जिनकी राजनीतिक अवस्था काफी विकसित हो चुकी थी, अस्तित्व मे आ जाते हैं। इन नगरो का उदय किस प्रकार हुआ, इसका अध्ययन हम अगले अध्याय मे करेंगे। इसके पूर्व ताम्रकाल के उन आविष्कारो का अध्ययन करना आवश्यक है जिनके कारण नगर सभ्यता के प्रमुख तत्त्व अस्तित्व मे आ सके।

ताम्र का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग

ताम्र का हथियार और औजार बनाने के लिये प्रयुक्त होना मानव जीवन मे क्रान्तिकारी आविष्कार था। ताम्र का प्रयोग इतना सरल नही था जितना पाषाण का। किसी प्रस्तर-खण्ड में हथियार बनाने के लिये उसे केवल एक विशेष विधि से तोड़ना और घिसना होता था परन्तु ताम्र का उपयोग करने के लिये अत्यधिक विज्ञान-कौशल (Technical skill) की आवश्यकता थी। इस पर भी ताम्र एक द्रव्य के रूप में पाषाण की तुलना म बहुत उत्तम था, इसलिये उसका प्रयोग शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया।

ताम्र के गुण—(१) ताम्र एक लचीली धातु है। इसे न केवल पाषाण की तरह घिसा जा सकता है वरन आसानी से मोड़ा भी जा सकता है। इसे हथौड़े से पीटकर इच्छित रूप दिया जा सकता है और चादरें बनाई जा सकती हैं जिनको काटकर विविधाकार के उपकरण बनाये जा सकते हैं। ताम्र के इस गुण का आविष्कार मिश्र म बदारियन और सियालक द्वितीय में हो चुका था।

(२) ताम्र के उपकरणो म पत्थर के उपकरणो मे समान कठोरता और तीक्ष्णता तो होती ही है साथ ही स्थायित्व भी होता है। पकी मिट्टी और पाषाण-हथियारो का एक बार टूटने पर जोड़ा नहीं जा सकता परन्तु ताम्र के उपकरण न तो इस प्रकार टूटते हैं और यदि खराब हो भी जाते हैं तो उन्हें गलाकर नये उपकरण बनाये जा सकते हैं। थोड़ी बहुत खराबी को पीटकर या रगड़कर ठीक किया जा सकता है। ताम्र म पत्थर की कठोरता के साथ साथ गीली मिट्टी का लचीलापन भी मिलता है। जिस प्रकार गीली मिट्टी के टुकड़ो

को जोडा जा सकता है उसी प्रकार ताम्र के टुकडो को भी। परन्तु ताम्र म इनके अतिरिक्त और बहुत से गुण है जो मिट्टी और पत्थर म नही पाये जाते। उदाहरणाय ताम्र को पिघलाया जा सकता है। उस समय यह मिट्टी की तरह लसलसा ही नही वरन् पानी की तरह तरल हो जाता है। अगर तरलावस्था म इसे किसी साँचे मे डाल दिया जाय और फिर ठडा कर लिया जाय तो यह उस साँच का रूप धारण कर लेता है परन्तु इसकी कठोरता लौट आती है। ढालकर उपकरण बनाना सम्भव होने से ताम्र स कम-से-कम उतने प्रकार के उपकरण बन सकते है जितने प्रकार के साँचे उपलब्ध हो। ढले हुय उपकरणो को पीटकर तथा रतकर सुधारा जा सकता है। सियालक तृतीय तथा गरजियन सस्कृतिया म ताम्र के इन गुणा से लाभ उठाने की विधि की खोज हो चुकी थी।

(३) जिन स्थाता पर ताम्र विशुद्धावस्था म नहा मिलता वहा इसे वैज्ञानिक विधियो द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। एसे बहुत से पाषाण होते हैं जिनको चारकोल के साथ गम करने पर ताम्र निकल आता है। सियालक तृतीय और अलउवद युग मे इस विधि का भी आविष्कार हो गया था।

(४) दजला और फरात की घाटियो तथा अय एसे प्रदशो मे जहाँ पत्थर बाहर से मँगाया जाने के कारण मँहगा पडता था ताम्र के हथियार पत्थर के हथियारो से सस्ते पडते थ क्योकि ताम्र का एक हथियार पत्थर के कई हथियारो के बराबर चलता था। युद्ध में ताम्र का हथियार ज्यादा उपयोगी सिद्ध होता था। पत्थर का हथियार किसी समय भी टूट सकता था जबकि ताम्र के हथियार के साथ इस प्रकार का भय नही था। इसके अतिरिक्त जसा कि हम देख चुके हैं ताम्र को टिन या सीसा मिलाकर और कठोर किया जा सकता था।

कृषि कर्म सम्बन्धी आविष्कार

पशुओ से खाल मास और दूध इत्यादि की प्राप्ति मनुष्य नव-पाषाणकाल मे ही करने लगा था। अब उसने यह विचार किया कि पशुओ से एस बहुत से काय लिए जा सकते हैं जिनको करने म उसे स्वय अत्यधिक श्रम करना पडता है। खेत जोतने का काम इनम सबसे कठिन था। इस काम को अब तक स्त्रियाँ करती थी। अब मनुष्य ने जुए (Yoke) का आविष्कार किया (चित्र ४३, पृ० ८६) जिसम बैलो को जोतकर हल खिचवाया जा सकता था। स्वय हल का आविष्कार कब हुआ यह कहना कठिन है। प्रारम्भिक हल लकडी के बनते थ इसलिय उनके अवशेष प्राप्त नही होते। इतना निश्चित है कि ३००० ई० पू० के आसपास इसका प्रयोग मिश्र मसोपोटामिया और सम्भवत भारत म हो रहा था (चित्र ४३)। इसका आविष्कार इस तिथि के कई शताब्दी पहले हो गया होगा। मिश्र म हल का

विकास सम्भवत. कुदाली से हुआ। कुदाली की मूंठ को दोनो ओर बढाने से काम चलाऊ हल बन सकता था। मिश्र की समाधियो से प्राप्त चित्रों से इसका समर्थन होता है (चित्र ४३, ४५)। हल के आविष्कार से कृषि-कर्म उस रूप मे

चित्र ४५ : पिरेमिड युग मे कुदाल का प्रयोग

आ जाता है जिसमे वह आधुनिक काल मे औद्योगीकरण होने के पहले तक रहा। इससे कृषि-कर्म और पशुपालन भी घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हो जाते हैं। अब प्रत्येक किसान को अपने घर मे बैल रखने की व्यवस्था करनी पडी। इससे खाद के लिए गोबर उपलब्ध होने लगा। इससे भी उपज मे वृद्धि हुई। कृषि-कर्म के
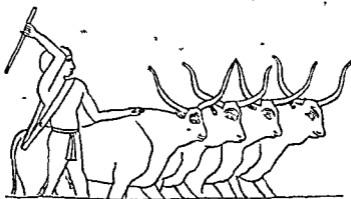
चित्र ४६ : प्राचीन मिश्र मे पशुओं को हाँक कर ले जाता हुआ एक कृषक

क्षेत्र मे किया गया एक और आविष्कार फलों की खेती से सम्बन्धित है। अभी तक मनुष्य फलों के केवल जगली रूप से परिचित था। अब उसने खाद्यान्न के

समान फलो का स्वय उत्पादन करना प्रारम्भ किया। इसका उसके भोजन और सामाजिक जीवन पर काफी प्रभाव पडा।

यातायात सम्बन्धी आविष्कार

पशुओं का परिवहन में प्रयोग—कृषि-कर्म मे बैलो का हल खीचने मे प्रयोग होने का एक अप्रत्यक्ष परन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव यातायात पर पडा। अभी तक एक स्थान से दूसरे स्थान को माल ले जाने का कार्य स्वय मनुष्य, विशेषत स्त्रियाँ करती थी। इसके अतिरिक्त वे स्लेज गाडी का भी, जिसे सम्भवत कुत्ते खीचते थे, प्रयोग करते थे। जब मनुष्य ने बैलो को हल खीचते देखा तो उसे यह विचार आया कि बैल स्लेज गाडी भी खीच सकते हैं। मेसोपोटामिया मे स्लेज गाडियाँ कम-से-कम २६०० ई० पू० तक प्रयुक्त होती रही। यातायात मे पशुओ का भार-वाहक के रूप म भी प्रयोग किया जाता था। सबसे पहला पशु, जिसे यह कार्य दिया गया, बैल न होकर गधा था। ३००० ई० पू० के पहले गधे का भारवाहक

चित्र ४७ भार ढोकर ले जाता हुआ गधा पिरेमिड युग के एक चित्र की अनुकृति

के रूप म मिश्र में प्रयोग प्रारम्भ हो गया था (चित्र ४७)। सीरिया और मेसोपोटा मिया मे भी तीसरी सहस्राब्दी के प्रारम्भ से इसका निश्चित रूप से उपयोग हो रहा था। घोडे का पालन दूध प्राप्त करने के लिए बहुत पहले ही प्रारम्भ हो चुका था। परन्तु घुडसवारी गाडी खीचने और भार ढोने के लिए इसका प्रयोग २००० ई० पू० के पहले हुआ या नही यह कहना कठिन है। सिंधु घाटी से २५०० ई० पू० के लगभग घोडे की काठी (Saddle) की सन्देहास्पद अनुकृतियाँ मिली हैं। ३००० ई० पू० के लगभग सुमेरियन किसी अश्वसम पशु (Equid)

को रथ मे जोडते थे, ऐसा कुछ चित्रो से मालूम होता है। फ्रैंकफर्ट ने इस पशु को घोडा, वूली ने गधा तथा अन्य कुछ विद्वानों ने खच्चर बताया है। ऐसा ही सन्देह ऊँट के प्रयोग के विषय मे भी है।

बैलगाडियाँ—यातायात मे सबसे क्रान्तिकारी आविष्कार पहिये का था। हलफियन युग मे पहिये के प्रयोग के निश्चित प्रमाण मिलते हैं। ३००० ई० पू०
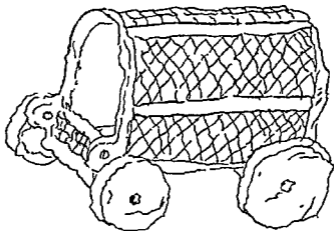
चित्र ४८ · तेपगावरा से प्राप्त खिलौना-गाडी की अनुकृति

के लगभग दो और चार पहिये वाली गाडियाँ तेपगावरा मे प्रयुक्त हो रही थी (चित्र ४८)। २००० ई० पू० तक इस प्रकार की गाडियाँ सिन्धु से लेकर

चित्र ४९ गरजियन युग का एक मृदभाण्ड

ओट तक और १००० ई० पू० मे चीन से लेकर स्वीडन तक प्रचलित हो गई थी, परन्तु मिश्र मे १६०० ई० पू० के पहले इनका प्रचलन नहीं हो पाया था।

जल यातायात—३००० ई० पू० तक वायु की सहायता जल-यातायात मे ली जाने लगी थी। नव-पाषाणकाल मे मनुष्य ने बड़े और छोटी-छोटी नावें बनाना सीख लिया था। ताम्रकाल मे उसने पाल का प्रयोग करना सीखा। गरजियन और अलउबेद के मृद्भाण्डो पर पालदार नावों की अनुकृतियाँ इसका निश्चित प्रमाण हैं (चित्र ४६)। तीसरी सहस्राब्दी मे पालदार नावो का मिश्र, और पूर्वी मेडीट्रनियन प्रदेश मे प्रचुरता से प्रयोग हो रहा था। यह प्रथम अवसर था जब मनुष्य ने किसी भौतिक-शक्ति को चालक शक्ति के रूप मे प्रयुक्त किया। कालान्तर मे यातायात की यह विधि अन्य सब विधियो से सस्ती सिद्ध हुई।

मृद्भाण्ड कला

यातायात मे हुई क्रान्ति का प्रभाव एक और उद्यम पर भी पडा। वह उद्यम है मृदभाण्ड बनाने की कला। नव-पाषाणकाल के अन्त तक मनुष्य मृद्भाण्ड हाथ से बनाता था। जब उसने पहिये के आविष्कार का प्रयोग बैलगाडी के निर्माण

चित्र ५० प्राचीन मिश्र म चाक पर बतन बनाते हुए कुम्हार

मे किया तब उसे यह भी विचार आया कि पहिये की सहायता से वह कम समय मे अधिक सख्या म सुन्दरतर मृदभाण्ड बना सकता है। इस प्रकार कुम्हार का चाक (Potters' wheel) अस्तित्व म आया (चित्र ५०)। इसके कारण मृद्भाण्ड कला एक विशिष्ट उद्यम बन जाता है।

नये आविष्कारो के परिणाम

विशिष्ट वर्गों का उदय और आत्म निर्भरता का अन्त—उपर्युक्त आविष्कारो का सामाजिक और आर्थिक-व्यवस्था पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत प्रभाव

पडा। इनके कारण बहुत से वर्ग, जिनके कार्य इतने जटिल थे कि साध गृहस्थ उन्हें नहीं कर सकते थे, अस्तित्व मे आये। ये वर्ग धीरे-धीरे खाद्यान्न के उत से दूर हटते गये और अपनी उदरपूर्ति के लिए अपनी विशिष्ट विद्याओ पर निर्भर लगे। दूसरी ओर साधारण कृषक को उनकी विद्या से लाभ उठाने के लिए अति उत्पादन करना पडा। इससे व्यक्ति और ग्राम की आत्मनिर्भरता को धक्का पहुँ उदाहरण के लिए ताम्र के आविष्कार को ही लीजिये। ताम्र के उपकरण ब के लिये बहुत-सी वस्तुओ, जैसे ऊँचा तापक्रम उत्पन्न करने के लिये भट्टी, बहु पात्र, सँडसी और साँचे इत्यादि की आवश्यकता पडती थी। इनका ज्ञान और के बनाने, पिघलाने, और ढालने की विधि तत्कालीन साधारण मनुष्यों के लिए जटिल थी। पत्थर से ताँबे का निकल आना, ताँबे का पिघलना और फिर विविधा उपकरणो के रूप मे साँचो मे ढल जाना, ये सब बातें उनके लिए जादू के स थी। ये कार्य सभी व्यक्ति नहीं कर सकते थे, इसलिए जादूगर-पुजारियों के ताम्र उपकरण बनाने वाले ठठेरे (Copper smiths) समाज का दूसरा विशि वर्ग—धातु-शास्त्र के विशेषज्ञ—बने। उनकी विद्या इतनी जटिल थी कि वे न इसे सबको सिखा सकते थे और न सब व्यक्ति इसे सीख ही सकते थे। वे वे अपने योग्य और प्रिय शिष्यो तथा पुत्रों को अपनी विद्या प्रदान करते थे। उदरपूर्ति के लिये स्वय खाद्य-सामग्री उत्पन्न करने के स्थान पर अपनी विद्या निर्भर रहना पडता था। दूसरी ओर अन्य व्यक्तियो को उनकी विद्या से ल उठाने के लिये—ताम्र उपकरण प्राप्त करने के लिये—अतिरिक्त खाद्य-सामग्री त वस्त्रादि उत्पन्न करने पडते थे।

ठठेरो की तरह खान खोदने वाले और पत्थर पिघलाकर ताम्र निकालने व व्यक्तियों का कार्य भी कम आसान नहीं था। कच्चा ताँबा चट्टानो की नसो मिलता है। खान खोदने वालो के लिए यह आवश्यक था कि वे ऐसी चट्टानों पहिचान, तोडने की विधि और खान खोदने की जटिल विधि से परिचित ह कच्चे माल को पिघला कर धातु बनाने की रासायनिक-प्रक्रिया भी कठिन थ इसमे ऊँचे तापमान वाली भट्टी की आवश्यकता पडती थी। उसका विशद ज्ञान बहुत थोडे व्यक्ति प्राप्त कर सकते थे, और जो इस विधि का ज्ञान प्राप्त करते वे खाद्योत्पादन मे समय नहीं लगा सकते थे। ताम्र सब स्थानो पर नहीं मिलता यह अधिकतर उन पहाडी प्रदेशो मे मिलता है जहाँ मनुष्यों का आगमन नहीं होता टिन तो और भी कम स्थानो पर मिलता है। इसलिए ताम्र और काँस्य के प्रयं का अर्थ था उसे बाहर से मँगाते रहना और इसका अर्थ था व्यापार, और यह आवश्यक वस्तु का, विलासिता की वस्तु का नहीं। ज्यो ही किसी समाज ने ता के उपकरणो की आवश्यकता अनुभव की, वह दूसरे समूहों पर निर्भर हो गया।

ठठेरों के बाद दूसरा विशिष्ट वर्ग कुम्हारों का था। नव-पाषाणकाल तक प्रत्येक परिवार की स्त्रियाँ आवश्यकता के वर्तन स्वय बनाती थीं। अब चाक का आविष्कार हो जाने के कारण एक दिन मे कई गुने परन्तु सुन्दरतर मृद्‌भाण्ड बनाना सम्भव हो गया। परन्तु चाक का प्रयोग करना सभी व्यक्ति नही सीख सकते थे। इसलिये अब यह एक वर्ग का ही कार्य हो गया। चाक का सर्वप्रथम प्रयोग सियालक तृतीय मे मिलता है। सिन्धु-सभ्यता के निर्माता भी इससे परिचित थे। मिश्र मे इसका प्रयोग पहियेदार गाडियो के प्रयोग से एक सहस्र वर्ष पूर्व, अर्थात २५०० ई० पू० के लगभग, प्रारम्भ हो गया था (चित्र ५०)। एक और नया विशिष्ट वर्ग बढ़इयों का हो सकता है। गाडियो और नावो की माग बढ जाने के कारण बढई का स्था महत्त्वपूर्ण हो गया होगा। परन्तु आजकल भी कृषक बिना बढई बुलाये स्वय नाव और गाडियाँ इत्यादि बना लेते है, इसलिये बढई-वर्ग का अस्तित्व सन्देहास्पद हो सकता है।

स्थायी जीवन को प्रोत्साहन—सामाजिक और आर्थिक जीवन मे हुये कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तनो का कारण फलो की खेती का अविष्कार था। फलो और खाद्यान्न की खेती मे अन्तर है। खाद्यान्न को प्रतिवर्ष बोना और काटना होता है। इसलिये एक वर्ष एक स्थान पर खेती करने के बाद मनुष्य दूसरे वर्ष दूसरे स्थान पर जा सकता है, परन्तु खजूर, जैतून और अगूर के वृक्ष और लताओ मे फल ५-६ वर्ष बाद लगते हैं, परन्तु एक बार लगने के बाद लगातार ७०—८० वर्ष तक मिलते रहते है। इसलिये फलों की खेती ने मनुष्य को स्थायी जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य कर दिया। दूसरे, अगूर की खेती से शराब बनाने की कला अस्तित्व मे आई। हो सकता है इससे पहले भी मनुष्य जौ इत्यादि से शराब बनाता रहा हो। इतना निश्चित है कि ३००० ई० पू० तक शराब सुमेरियन जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान पा चुकी थी।

व्यक्तिगत सम्पत्ति और मुद्राएँ—नये-नये आविष्कारो के कारण मनुष्यो के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति बढने लगी। इस पर अपना अधिकार प्रकट करने के लिए वे मुद्राओं की छाप लगाने लगे। मुद्राओ का प्रादुर्भाव निश्चित रूप से तावीजों से हुआ। तावीजों (Amulets) पर बहुधा कबीले का चिह्न (Totem) या कोई धार्मिक डिजायन खोद दिया जाता था। यह विश्वास किया जाता था कि तावीज के पहिनने वाले के पास तावीज के चिह्न या डिजायन का 'मन' (Mana) अथवा गुप्त-शक्ति आ जाती है। धीरे-धीरे यह विश्वास किया जाने लगा कि अगर किसी वस्तु पर तावीज की छाप लगा दी जाय तो वह शक्ति उस वस्तु मे भी आ जाती है, अर्थात उस वस्तु पर उस तावीज के पहिनने वाले का अधिकार स्थापित हो जाता है और उसके अधिकार का उल्लघन होने पर तावीज की शक्ति अपराधी को दण्डित करती है। इस प्रकार तावीजों से मुद्राएँ अस्तित्व

में आई जिनका छाप लगाकर वस्तुओं पर अधिकार प्रकट किया जा सकता था।

सामाजिक संगठन में परिवर्तन—स्वामी भाव का प्रदर्शन केवल भौतिक वस्तुओं पर ही नहीं वरन् मनुष्यों पर भी प्रकट किया जा सकता था। ताम्रकाल में विभिन्न समूहों में पारस्परिक संघर्ष बढ़ गये थे इसलिये यदा-कदा युद्ध होते रहते थे। इन युद्धों में पराजित शत्रु को दण्ड देने के लिये दास प्रथा (Slavery) का प्रचलन हुआ। दूसरे शब्दों में मनुष्य ने मनुष्य को पालतू बनाना सीखा। सामाजिक व्यवस्था में दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन स्त्रियों की दशा से सम्बन्धित है। नव पाषाणकाल में हुये अधिकांश आविष्कारों का श्रेय स्त्रियों को था। इसलिये उस युग में उनकी स्थिति पुरुषों से उत्तम और परिवार व्यवस्था मातृसत्तात्मक थी। ताम्रकाल में अधिकांश आविष्कार स्वयं पुरुषों ने किये थे इसलिए इस काल में स्त्रियों की तुलना में उनकी अवस्था अधिक अच्छी हो जाती है। इन आविष्कारों से स्त्रियों को बोझा ढोने, रस्से जोतने और बर्तन बनाने जैसे कार्यों से मुक्ति मिल गई परन्तु उनका सामाजिक स्तर गिर गया। अब सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक हो गई अर्थात् परिवार का स्वामी पुरुष हो गया। परिवार की सम्पत्ति पर जिसमें आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, औजार, भूमि और दासादि होते थे उसका अधिकार हो गया और परिवार के सब स्त्री-पुरुष उसकी आज्ञा मानने के लिए बाध्य हो गये। साधारणतः एक समूह में जिस व्यक्ति के पास सबसे अधिक सम्पत्ति और दास होते थे वह युद्धों में नायक का भी काम करता था। अगर वह सफल नायक सिद्ध होता था तो उसकी शक्ति बढ़ जाती थी। वह एक प्रकार से समूह या कबीले का मुखिया बन जाता था। उसकी सम्पत्ति का स्वामी उसके बाद उसका पुत्र होता था इसलिये व्यवहार में मुखिया या नायक पद भी पैतृक होता जाता था। यही मुखिया कृषि नाटक (पृ० ८२) में अन्नदेव का अभिनय करते-करते वास्तविक राजा बन बैठे।

ऊपर दिया गया चित्र खफजा से प्राप्त तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० के प्रारम्भ का एक रिलीफ में बनी मूर्ति की अनुकृति है। इसमें दो व्यक्तियों को एक डण्डे में एक बड़ा घड़ा लटकाकर ले जाते हुये दिखाया गया है।

१०

काँस्यकाल, नगर-क्रान्ति और सभ्यता का जन्म

कांस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग

ताम्रकाल के अन्त म, ३००० ई० पू० के लगभग, मनुष्य ने कास्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिए प्रयोग करने की विधि का आविष्कार किया। ताम्र और कांस्य म अधिक अन्तर नही है। ताम्र पाषाण से लचीला होता है, इसलिय उसके उपकरणा की धार शीघ्र नष्ट हो जाती है। यदि इसमे थोडा-सा टिन मिला दिया जाय तो अधिक कठोरता आ जाती है। इस मिश्रित धातु को ही कांस्य (Bronze) कहते है। इसका आविष्कार सम्भवत आकस्मिक रूप से हुआ हागा। कभी ताम्र को पिघलात समय उसम टिन मिल गया होगा, स्वाभाविक है इस मिश्रित धातु से बने उपकरण अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए हाग। इसी से

ऊपर दिय गय चित्र मे जो थीबिज नगर (मिश्र) से प्राप्त हुआ है इटा के बनान की विधि का अङ्कन है। चित्र में बाई ओर एक श्रमिक फावडे (Hoe) से गीली मिट्टी मे भूसा मिला रहा है। दूसरा श्रमिक अपने साथी के कन्धे पर मिट्टी की बाल्टी रख रहा है। ऊपर बाई ओर एक कारीगर गीली मिट्टी को सांचे मे डालकर इटें बना रहा है। श्रमिक गीली मिट्टी उसके सामन डाल रहा है। एक निरीक्षक छडी हाथ म लिए उनका काम देख रहा है। नीच एक व्यक्ति बैठकर ईंटों के ढर का माप रहा है और दूसरा बहँगी (Yoke) म इन्हें भरकर गन्तव्य स्थान को ले जा रहा है।

मनुष्य ने काँस्य की महिमा जानी होगी। यह आविष्कार सर्वप्रथम कब और कहाँ हुआ, कहना कठिन है। इतना निश्चित है कि इसका प्रयोग सिन्धु प्रदेश, मिश्र, क्रीट और सुमेर में ३००० ई० पू० से कुछ पहले या कुछ बाद में, ट्राय में २०००
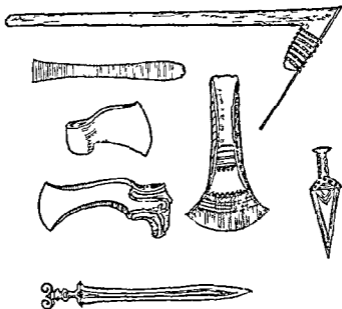
चित्र ५३ कांस्यकालीन-उपकरण

ई० पू० के बाद तथा शेष यूरोप में इसके भी बाद प्रारम्भ हुआ। स्मरणीय है कि दक्षिणी भारत, जापान, उत्तरी अमरीका और आस्ट्रेलिया में बहुत से भाग ऐसे हैं जहाँ ताम्र और कॉस्यकाल कभी नहीं आये। वहाँ मनुष्य ने पाषाणकाल से सीधे लौहकाल में प्रवेश किया।

नगर-क्रान्ति

नगरों के उदय के कारण—(१) ताम्र और काँस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि तथा हल पहिया बैलगाडी और पालदार नाव इत्यादि आविष्कार क्रान्तिकारी सम्भावनाओं से परिपूर्ण थे। परन्तु समाज का पुनर्गठन हुये बिना इनसे समुचित लाभ नहीं उठाया जा सकता था। इसका प्रमाण सीरिया, ईरान तथा मेडीटरेनियन के तटवर्ती प्रदेश और बलूचिस्तान में रहने वाली जातियाँ हैं, जो ताम्र से ही नहीं वरन् उपर्युक्त अधिकांश आविष्कारों से परिचित होते हुये भी विशेष प्रगति नहीं कर सकीं। इसका प्रमुख कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था का यथावत् बने रहना था। परन्तु नील दजला और फरात तथा सिन्धु

की घाटियो मे परिस्थितियाँ भिन्न थी। जैसा हम देख चुके हैं, यह विशाल भूभाग होलोसीन युग के आरम्भ से ही अधिकाधिक शुष्क होता जा रहा था। अत यहाँ मनुष्य ऐसे स्थानो पर बसना पसन्द करता था जहाँ उसे व्यक्तिगत आवश्यकताओ की पूर्ति और कृषि-कर्म के लिये पूरे वर्ष पर्याप्त जल मिल सके। यह सुविधा केवल उपर्युक्त नदियो की घाटियो म ही उपलब्ध हो सकती थी। इसलिये हम देखते है कि चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० मे मिश्र, सुमेर तथा सिन्धु प्रदेश मे निवास करने वाले मनुष्यो की सख्या बढने लगती है और बडे-बडे नगर अस्तित्व मे आने लगते हैं। ये नगर आधुनिक काल के लदन और न्यूयार्क नगरो की तुलना मे बहुत छोटे थे, परन्तु ताम्र प्रस्तरकालीन ग्रामो की तुलना मे बहुत बडे थे। अत गॉर्डन चाइल्ड ने मानव-सभ्यता के इस अध्याय को 'नगर-क्रान्ति का युग' कहा है।

(२) मिश्र एक छोटा सा देश है और चारो ओर से रेगिस्तानो, पर्वतो और समुद्रो से घिरा है, तथापि नील नदी ने, सहस्रो वर्षों मे बाढ के साथ लाई हुई मिट्टी से इसके मध्य एक अत्यन्त उर्वर भूखण्ड निर्मित कर दिया है। यह भूखण्ड ३० फुट मोटी उर्वर मिट्टी की तहो से बना है और लगभग ७५० मील लम्बा तथा १० से ३० मील तक चौडा है। प्राचीन काल मे यह प्रदेश इतना उपजाऊ था कि यहाँ एक ही वर्ष मे तीन-तीन फसल उगाना असम्भव नही था। सुमेर भौगोलिक दृष्टि से उस उर्वर अर्धचन्द्र (Fertile Crescent) का दक्षिण पूर्वी सिरा है, जो मेडीटेरेनियन के पूर्वी तट पर पैलेस्टाइन से प्रारम्भ होता है और सीरिया तथा असीरिया होता हुआ दक्षिण-पूर्व मे फारस की खाडी के तट तक चला गया है (मानचित्र ३)। जिस प्रकार मिश्र नील नदी के द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना था उसी प्रकार सुमेर दजला और फरात द्वारा लाई हुई मिट्टी स। यहाँ की भूमि की उर्वरता भी विश्व विख्यात थी। यहाँ उपज साधारणत बीज की छियासी गुना होती थी। सौ गुनी उपज भी असम्भव नहीं थी। इसके अतिरिक्त यहाँ नदी झीलो और तालाबो मे मछली और भूमि पर खजूर के वृक्ष बहुतायत से मिलत थ। इस प्रकार मिश्र और सुमेर दोनो ही मनुष्य को आकर्षित करने वाले प्रदश थ। परन्तु इनको आवास के योग्य बनाने के लिए कठोर श्रम करना आवश्यक था। इन दोनो ही प्रदेशो म वर्षा नाम मात्र को होती थी। यह ठीक है कि यहाँ प्रतिवर्ष बाढ आती थी परन्तु बाढ उतरने के कुछ दिन बाद ही भूमि सूखकर कठोर हो जाती थी। अत कृत्रिम सिंचाई किये बिना कृषि-कर्म मे सफलता मिलना कठिन था। दूसरे, बाढ के जल को नियन्त्रित करना भी आवश्यक था। सुमेर मे एक कठिनाई और थी। यह हाल ही मे दजला और फरात के द्वारा लाई मिट्टी मे बना होने के कारण दलदलो से भरा [illegible] इन दलदलो मे नरकुल के घन जगल थे। दलदलो को सुखाये [illegible]

को साफ किये बिना यहाँ की भूमि की उर्वरता निरर्थक थी। परन्तु जंगल साफ करना, बाढ के जल को बाँध बनाकर नियन्त्रित करना और नहरो द्वारा सिंचाई की व्यवस्था करना, ये सब काम ताम्रकाल के छोटे-छोटे गाँवो के निवासी नही कर सकते थे। इसके लिये मनुष्य को विशालतर मानव समूहो में सगठित होना आवश्यक था। एक बार बाँध और नहरें बना लेने के बाद उनकी रक्षा के लिये भी सदैव प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता थी। इसलिये मिश्र और सुमेर मे विशाल मानव-समूहो का एक स्थान पर स्थायी रूप मे निवास करना आवश्यक हो गया। इससे मिलती-जुलती भौगोलिक परिस्थिति सिन्धु-प्रदेश मे भी थी। इसलिये वहाँ भी, लगभग उसी समय, नगर-सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ।

सुमेर में नगरों का आविर्भाव—चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० सुमेर, मिश्र और सिन्धु प्रदेश मे, ताम्रकालीन ग्रामो के स्थान पर कांस्यकालीन नगरो के उदय का युग है। इस सक्रान्ति-काल पर सबसे अच्छा प्रकाश सुमेरियन साक्ष्य मे पडता है। इस प्रदेश के इरिडू, उर, इरेक, लागाश और लारसा इत्यादि नगरो मे विकास की क्रमिक अवस्थाएँ लगभग एक सी हैं, इसलिये इरेक के साक्ष्य को उदाहरण के रूप मे लिया जा सकता है। इस नगर के प्राचीनतम अवशेष हलफियन और अलउबेद (al'Ubaid) युग के हैं। अलउबेद और एतिहासिक युग के प्रारम्भ (लग० ३००० ई० पू०) के अवशेषो मे ५० फुट का अन्तर है। इनका पुरातत्त्ववेत्ता उरुक (Uruk) और जम्देतनस्र (Jemdet Nasr), इन दो सास्कृतिक युगो मे विभाजित करते हैं। उरक-युग मे इरेक ग्राम के स्थान पर नगर बन जाता है। इस युग मे बना इनना देवी का मन्दिर १०० फुट लम्बा और २४५ फुट चौडा है तथा अनु देवता का जिगुरत ३५ फुट ऊँचा। इस युग का अन्त लगभग ३५०० ई० पू० मे होता है। अगला युग जम्देतनस्र कहलाता है। इस युग मे नगर का वैभव बढ जाता है विदेशो से बहुमूल्य पाषाण अधिक मात्रा मे मँगवाये जाने लगते हैं, काचन (Glaze) किये हुए उपकरण और मुद्राएँ तथा हल्के रथो का निर्माण होने लगता है तथा लिपि और अङ्को का आविष्कार हो जाता है। लिपि का आविष्कार हो जाने के कारण साहित्यकारो और विद्वानो के लिये अपनी रचनाओ, व्यापारियो के लिये अपना हिसाब किताब पुजारियों के लिये मन्दिरो की आय-व्यय का विवरण और जादू-टोने तथा राजाओ के लिये अपनी उपलब्धियो को लिपिबद्ध करना सम्भव हो जाता है। इसलिये ३००० ई० पू० के लगभग सुमेर के प्रागैतिहासिक युग का अन्त होता है और एतिहासिक युग प्रारम्भ होता है।

केन्द्रीय शक्ति का आविर्भाव

केन्द्रीय शक्ति की आवश्यकता—सुमेर तथा अन्य स्थानो पर नागरिक जीवन का मूलाधार समाज का सुगठित होना था। प्रत्येक नगर की सफलता इस बात

पर निर्भर रहती थी कि उसके नागरिक सामूहिक रूप से सार्वजनिक निर्माणकार्य, जैसे नहर बनाना बाँध बनाना और मन्दिर जिगुरत तथा अन्य भवनों का निर्माण करना आदि में भाग लेते हैं। इसके लिए यह आवश्यक था कि सार्वजनिक निर्माण कार्यों की योजना बनाई जाय उस योजना को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक जन शक्ति और साधन हों श्रमिकों को वेतन के रूप में देने के लिए भण्डारों में अन्न और अन्य सामग्री हो तथा इन योजनाओं को व्यवस्थित रूप से कार्यान्वित करने वाली और नागरिकों को अनुशासन में रखने वाली कोई केन्द्रीय शक्ति हो।

सुमेर के सत्ताधारी पुजारी और मिश्र के फराओ—सुमेर में नगरों में व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व सिद्धान्ततः नगर के प्रधान मन्दिर के देवता और व्यवहार में प्रधान पुजारी का था। यहाँ भूमि को देवता की व्यक्तिगत सम्पत्ति मन्दिर को देवता का महल और प्रधान पुजारी को उसका प्रतिनिधि या वायसराय माना जाता था। प्रधान पुजारी देवता की आज्ञानुसार और अन्य पुजारियों की सहायता से नगर का व्यवस्था करता था। प्रत्येक नागरिक देवता का दास होता था इसलिये उसे नगर के सार्वजनिक निर्माणकार्यों में अन्य नागरिकों के साथ सहयोग देना होता था। बनी सख्या में दस्तकार कृषक कलाकार सेवक और लिपिक पुजारी-वर्ग के अनुशासन में रहकर कार्य करते थे। पुजारी मिट्टी की पाटियों पर मन्दिरों के आय-व्यय का समुचित रूप से हिसाब किताब रखते थे। सुमेर में यह व्यवस्था तब तक चलती रही जब तक देश का राजनीतिक एकीकरण न हो गया। सारगोन प्रथम के नेतृत्व में राजनीतिक एकीकरण हो जाने पर व्यवस्था में परिवर्तन होना आवश्यक था। मिश्र में इसके विपरीत एतिहासिक काल के प्रारम्भ में ही राजनीतिक एकीकरण हो जाता है इसलिये वहाँ समाज को व्यवस्थित करने और सार्वजनिक निर्माण कार्यों को व्यावहारिक रूप देने का उत्तरदायित्व राजा या फराओ पर पड़ा। सिंधु प्रदेश में भी किसी-न किसी प्रकार की शक्तिशाली सरकार अवश्य अस्तित्व में आ गई होगी परन्तु यहाँ की लिपि के न पढ़े जा सकने के कारण यह कहना कठिन है कि यहाँ की शासन-व्यवस्था का केन्द्र सामन्त थे अथवा पुजारी या राजा।

विदेशी व्यापार—सुमेर मिश्र और सिंधु प्रदेश इन तीनों ही स्थानों पर कृषकों को अतिरिक्त-उत्पादन करना पड़ता था। इसका एक कारण था समाज में ऐसे वर्गों का बढ़ जाना जो प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन-कार्य में भाग नहीं लेते थे। परन्तु इसका एक और भी कारण था। यह सभी प्रदेश ऐसे थे जहाँ आवश्यकता की सभी वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती थीं। सुमेर में न तो ताम्र मिलता था और न पत्थर। यहाँ तक कि भवन निर्माण के लिए लकड़ी भी बाहर से मँगानी पड़ती थी। मिश्र में पत्थर मिल जाता था परन्तु ताम्र लकड़ी मलकाइट बहुमूल्य पत्थरों तथा रांग (Tin) इत्यादि का आयात करना पड़ता था। मोहनजोदड़ो

और हड़प्पा के नागरिक देवदार और बहुमूल्य धातुएँ बाहर से मँगवाते थे। संक्षेप में, कांस्यकालीन नगर नव-पाषाणकाल और ताम्रकाल के गावों की तरह आत्म-निर्भर नहीं थे। उन्हें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बाहर से आयात किये हुए माल पर निर्भर रहना पड़ता था और इसके लिए अतिरिक्त-खाद्यान्न का उत्पादन करना पड़ता था। यह तथ्य नागरिक-जीवन के विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सुमेर में विदेशी व्यापार बहुत कुछ मन्दिरों के सदस्य व्यापारियों के हाथ में था। मिश्र में भी स्वतन्त्र व्यापारियों का एक वर्ग के रूप में अस्तित्व था। परन्तु सिन्धु प्रदेश में क्या अवस्था थी, यह कहना कठिन है। इतना निश्चित है कि उनके व्यापारिक सम्बन्ध कम-से-कम सुमेर तक अवश्य स्थापित हो गये थे। इन सब देशों के व्यापारी सौदागरों के माध्यम से विदेशों से माल का आयात और निर्यात करते थे। शीघ्र ही इन सौदागरों के काफ़िलों की सुविधा के लिये स्थान-स्थान पर

चित्र ५४ सुमेरियन रथ
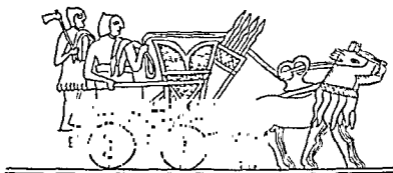
व्यापार केन्द्र स्थापित हो गये और विभिन्न देशों के शासकों को अपने देश के व्यापारियों के हितों और काफिलों की सुरक्षा के लिए सैनिकों की आवश्यकता पड़ने लगी। तीसरी सहस्राब्दी में हम बहुत से शासकों को अपने राज्य के व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिये युद्ध करते देखते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें लिये यह भी आवश्यक हो गया कि वे व्यापारियों, सौदागरों, कृषकों और अन्य वर्गों के पारस्परिक झगड़े सुलझाने के लिए राजकर्मचारी रखें और न्यायालय (Law Courts) स्थापित करें। न्यायालयों के लिये कानूनों (Laws) की आवश्यकता पड़ी। पहले प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार न्याय करने का प्रयास किया गया। कालान्तर में विविध स्थानों के रिवाजों में समरूपता लाने के लिए विधि-संहिताओं (Law Codes) की रचना की गई।

मन्दिरों के पुजारियों और व्यापारियों को सम्पत्ति और व्यापार सम्बन्धी आँकड़े रखने पड़ते थे इसलिये नगरों के उदय के साथ-साथ लिपि (Script) का जन्म भी हुआ। इसी प्रकार बहीखाता रखने की विद्या (Accountancy) अङ्क (Numerals) भार और नाप के निश्चित पैमाने (Standard Weights and Measurements) तथा ज्यामिति के नियम अस्तित्व में आये। लिपि के आविष्कार से प्रचलित लोक-कथाओं और विविध विद्याओं से सम्बद्ध ज्ञान को लिपिबद्ध करना सम्भव हो गया। इससे आगामी सन्ततियों के लाभार्थ साहित्य (Literature) की रचना और रक्षा हो सकी। इस बीच में कृषकों की सहायता के लिये नक्षत्रों का अध्ययन करके सौर पचाङ्ग (Solar Calendar) का आविष्कार किया जा चुका था। लिपि का आविष्कार हो जाने से खगोल विद्या और ज्योतिष से सम्बन्धित ज्ञान की प्रगति में बहुत सहायता मिली।

व्यापारियों को अपनी सम्पत्ति पर अधिकार व्यक्त करने के लिये और माल की बाहर भेजी जाने वाली गाठों पर चिह्न अङ्कित करने के लिये मुद्राओं (Seals) की आवश्यकता पड़ती थी (चि० ५७)। इससे मुद्रा बनाने की कला (Lapidary) का विकास हुआ और मुद्रा बनाने वाले कलाकारों का स्वतन्त्र वर्ग के रूप में जन्म हुआ। इससे काचन विद्या (Glazing) के ज्ञाताओं और शीशा (Glass) बनाने वाले कलाकारों की माँग भी बढ़ी।

स्थायी जीवन व्यतीत करने के कारण मनुष्य के लिये यह सम्भव हो सका कि वह अपना जीवन सुखमय बनाने की ओर ध्यान दे। सबसे पहले उसने अपने भवनों की ओर ध्यान दिया। वह नव पाषाणकाल और ताम्रकाल के प्रारम्भ में मेसोपोटामिया और मिश्र में नरकुल और मिट्टी की झोपड़ियाँ बनाता था (चित्र ४०, पृ० ७६) परन्तु

चित्र ५८ सुमेर से प्राप्त एक महराब

कांस्यकाल में अर्थात् ३००० ई० पू० के कुछ पहले उसने ईंटों का आविष्कार किया। कच्ची ईंटें मिट्टी को साँचे में ढालकर और फिर धूप में सुखाकर बनाई जाती थीं (चित्र ५२ पृ० ६६)। सिंधु प्रदेश में पक्की ईंटों का बहुतायत से प्रयोग होता था। ईंटों के आविष्कार से झोपड़ियों के स्थान पर मकान बनाना सम्भव हो गया। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी से विभिन्न प्रकार के बर्तन बना सकता है उसी प्रकार कारीगर ईंटों को

थे और अपनी उपलब्धियों को मिट्टी की पाटियों पर उत्कीर्ण कराते थे। इस युग के, उत्खनन से प्राप्त होने वाले, महत्वपूर्ण अवशेष कृषि और आखेट से सम्बन्धित उपकरण नहीं वरन् राज-समाधियाँ, भव्य राज-प्रासाद, मन्दिर, जिगुरत, मूर्तियाँ, फर्नीचर, मुद्राएँ और अभिलेख इत्यादि हैं।

संक्षेप में, वे सब बातें जो सभ्य नागरिक जीवन के साथ जुड़ी हैं और वे सब आविष्कार जो मनुष्य के जीवन को सुखमय और सुविधापूर्ण बनाते हैं ताम्र और कांस्यकाल में, तीसरी सहस्राब्दी की प्रारम्भिक शताब्दियों तक, अस्तित्व में आ चुके थे। आगामी दो सहस्र वर्षों में मनुष्य इन सुख सुविधाओं को (वर्णमाला और लोहे का उत्पादन तथा उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि को छोड़कर) और अधिक नहीं बढ़ा पाया। इसीलिये कांस्यकालीन नगर क्रान्ति के युग को 'सभ्यता के जन्म' का युग कहा जाता है।

हमने ऊपर सभ्यता के जन्म का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमें सिन्धु प्रदेश, मिश्र और बैबिलोनिया के नागरिक जीवन से सम्बन्धित सभी प्रमुख तथ्य आ जाते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन तीनों स्थानों की सभ्यता एक सी थी। विस्तरश: अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि इन तीनों प्रदेशों की सभ्यता में मूलभूत अन्तर था। सुमेर और मिश्र की आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था पूर्णतः भिन्न थी। हो सकता है सिन्धु प्रदेश में कोई तीसरे प्रकार की व्यवस्था रही हो। सुमरियन समाज बहुत से स्वतन्त्र नगरों में विभाजित था, जिनके सामूहिक जीवन का केन्द्र नगर-मन्दिर होता था। मिश्र में प्राचीनतम युग में ही राजनीतिक एकीकरण हो जाता है और सत्ता पुजारियों के स्थान पर फराओ अथवा राजा के हाथ में केन्द्रित हो जाती है। सिन्धु प्रदेश की राजनीतिक व्यवस्था कैसी थी, यह ज्ञात नहीं है परन्तु यह स्पष्ट है कि वहाँ की व्यवस्था सुमेर और मिश्र की व्यवस्था से भिन्न रही होगी। इसी प्रकार की भिन्नता जीवन के अन्य क्षेत्रों में मिलती है। मिश्र के प्राचीनतम भवन राज-समाधियाँ हैं और सुमेर में मन्दिर। तीनों स्थानों पर लिपि का प्रयोग होता है पर किन्हीं दो स्थानों की लिपि एक सी नहीं है। मिश्र में लिपि का प्रयोग प्रारम्भ में मुद्राओं और स्मारकों पर किया गया जबकि सुमेर में मिट्टी की पाटियों पर मन्दिरों की आय और व्यय का विवरण लिखने में। कांस्य का प्रयोग इन तीनों देशों में किया जाता है परन्तु ठठेरे जो उपकरण बनाते हैं वे विभिन्न प्रकार के हैं। नगरों की योजना, मुद्राओं पर मिलने वाले चित्र, राज-समाधियाँ, धर्म, वेष भूषा रहन-सहन तथा ज्ञान विज्ञान, इन सभी बातों में सिन्धु प्रदेश की सभ्यता सुमेरियन सभ्यता से और सुमरियन-सभ्यता मिश्र की सभ्यता से भिन्न है। अत कहा जा सकता है कि यह युग केवल 'सभ्यता के जन्म' का युग ही नहीं वरन् 'विशिष्ट सभ्यताओं के जन्म' का

युग है। लाखों वर्ष तक प्रयास करने के बाद मनुष्य बर्बर जीवन का परित्याग कर सभ्य समाज को जन्म देने में सफल होता है, परन्तु स्वयं को प्रादेशिक वातावरण के अनुकूल बनाने के प्रयत्न में उसके 'सभ्य समाज' का रूप एक सा नहीं रह पाता। वस्तुतः ऐतिहासिक युग में मानव-इतिहास की विषय-वस्तु (Theme) प्रादेशिक सांस्कृतिक भेदों को मिटाकर यथार्थ एकता स्थापित करता रहा है।

पाषाणकालीन संस्कृतियाँ

निम्नलिखित सूची में पूर्व पाषाणकाल और मध्य-पाषाणकाल की उन संस्कृतियों के नाम दिये गये हैं जिनका उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है। प्रत्येक संस्कृति के नाम के आगे उसकी तिथि दी गई है (प्रा० पू० पा०=प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल, म० पू० पा०=मध्य-पूर्व-पाषाणकाल, प० पू० पा०=परवर्ती पूर्व-पाषाणकाल तथा म० पा०=मध्य-पाषाणकाल)। तिथि के आगे उस स्थान का निर्देश है जिसके नाम पर वह संस्कृति प्रख्यात है।

अस्तूरियन (म० पा०) अस्तूरिया, उत्तरी स्पेन।
अचूलियन (प्रा० पू० पा०) सेंट अचूल आमीन्स (सोम) उत्तरी फ्रांस।
अनयाथियन (प्रा० पू० पा०—प० पू० पा०) अन-या-था=उत्तरी बर्मा का निवासी।
अतेरियन (म० पू० पा०—प० पू० पा०) बीर अल अतेर ट्यूनिशिया।
अजीलियन (म० पा०) मास दाजील, दक्षिणी फ्रांस।
ऑरिग्नेशियन (प० पू० पा०) ऑरिग्नाक् तूलूस दक्षिणी फ्रांस से ४० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर एक गुफा।
एब्बेविलियन (प्रा० पू० पा०) एब्बविले (सोम) उत्तरी फ्रांस।
ओल्डोवान (प्रा० पू० पा०) ओल्डोवे गार्ज उत्तरी टंगानियका।
क्लेक्टोनियन (प्रा० पू० पा०) क्लक्टान एसेक्स।
काफुआन (प्रा० पू० पा) काफू नदी युगांडा।
किचेनमिडेन (म० पा०) डेनमार्क में प्रागैतिहासिक अस्थि इत्यादि के अवशेषों से निर्मित ढेर के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द।
केप्सियन (प० पू० पा०—म० पा०) गैटिन Capsa=Gafsa ट्यूनिशिया।
ग्रवेतियन (प० पू० पा०) ला ग्रावेत दार्दोन की घाटी दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।
चैलियन (प्रा० पू० पा०) चैल-सुर-मार्न पेरिस के निकट।
चोउ-कोउ-तियनियन (प्रा० पू० पा०) चाउ-काउ-तिएन गुफा पेकिंग से ४० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर।
तार्देनुआजियन (म० पा०) ला फेर-एन-तार्देनुआ उत्तर-पश्चिमी फ्रांस।
पत्जितनियन (प्रा० पू० पा०) पाजितन दक्षिणी मध्य जावा।
पेरिगोरडियन (प० पू० पा०) पेरिगोर्द प्रदेश दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।
मूस्टेरियन (म० पू० पा०) ले मूस्टीर दार्दोन दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।
मग्लेमोजियन (म० पा०) मगलमोस जीलैण्ड डेनमार्क।

मग्डेलेनियन (प० पू० पा०) ला मार्दले दार्दोन दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।
लेवालुआजियन (प० पू० पा०) लवालुआ-परेट पेरिस।
शेतलपेरोनियन (प० पू० पा०) शतलपरोन मध्य फ्रांस।
स्टेलेनबोश (प्रा० पू० पा०) स्टलेनबोश केपटाउन के समीप, दक्षिण अफ्रीका।
सोहन (प्रा० पू० पा०) साहन नदी उत्तरी पाकिस्तान।
सौल्यूट्रियन (प० पू० पा०) सौल्युट्र दक्षिण-पूर्वी फ्रांस।

शब्द-सूची

Age of Carbon	कार्बन कल्प
Age of Fishes	मत्स्य कल्प
Alignment	एलायन्मट
Amphibia	उभयचर
Amulet	तावीज
Anthropology	नृवंश शास्त्र, नृतत्त्व शास्त्र
Ape	एप
Arch	मेहराब
Archaeozoic Age	प्रजीव युग
Artifact	औजार, उपकरण
Australopithecus Africanus	ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस् अफ्रीकी मानव
Awls	सूआ टेकुला
Axe	कुल्हाड़ी छुरा
Azoic Age	अजीव-युग
Barbarian	बर्बर
Barrow	बरो
Blade	ब्लेड
Boskop Man	बोस्काप मानव
Bronze Age	कांस्य काल
Burin	रुखानी नक्काशी यन्त्र
Cainozoic Age	नवजीव युग
Calendar	पंचाङ्ग
Carpentry	काष्ठकला
Cave	गुफा, गुहा
Cell	कोष
Chalcolithic	ताम्र प्रस्तर युग
Chancelade Man	शामनाद मानव
Chopper	चापर

Clay	मृत्तिका, मिट्टी
Code	संहिता
Combo-Capello	कोम्ब कोपेल
Conglomerate	काग्लोमेरेट
Copper Age	ताम्रकाल
Core	कोर, आन्तरिक
Corn King	अन्नदेव
Cosmic Time	सृष्टि समय
Coup de poing	मुष्टि छुरा
Cro-Magnon	क्रोमान्यो
Cromlech	क्रोमलच
Culture	संस्कृति
Deposition	निक्षेप
Dolmen	डॉलमेन
Domestication of Animals	पशुपालन
Eocene Period	आदि-नूतन-युग
Eolith	इयोलिथ
Eolithic Age	इयोलिथिक-युग, पाषाणकाल का उप काल
Eonthropus	उप मानव
Equid	अश्वसम
Erosion	आवरण-क्षय
Excavation	उत्खनन
Exploration	अनुसंधान, अन्वेषण
Fertile Crescent	उर्वर-अर्धचन्द्र
Fertility Drama	कृषि-नाटक
Flake	फ्लेक फलक
Fontechevade Man	फौन्तेगवाद मानव
Fossil	प्रस्तरित-अवशेष
Genetic	आनुवंशिक
Geological Time	भूगर्भीय समय
Glacial Age	हिमयुग
Glacier	हिमानी

Glazing	काचन विधा
Granary	अन्नागार
Gravel	बजरी
Graver	रुखानी
Grimaldi Man	ग्रिमाल्डी मानव
Group	समूह
Hand axe	मुष्टि छुरा
Harpoon	हार्पून
Heidelberg Man	हीडलबर्ग मानव
Hoe	कुदाल
Holocene/Recent	सर्वनूतन युग
Hominid	मानव सम
Homo	मानव
Homo sapiens/True Man	पूर्णमानव मेधावी मानव
Ice Age	हिमयुग
Implememts	हथियार
Industry	उद्योग
Interglacial	अन्तर्हिमयुग
Interpluvial	अन्तवर्षायुग
Java Man	जावा मानव
Lake Dwellings	जलगृह
Magic	जादू
Mammals	स्तनपायी प्राणी
Mammoth	ममथ गजराज
Mana	मन
Matriarchal	मातृसत्तात्मक
Megalith	बृहत्पाषाण
Menhir	मेनहिर
Mesolithic/Middle Stone Age	मध्य-पाषाणकाल
Mesozoic Age	मध्य-जीवयुग
Metazoa	बहुकोषी जीव
Microburin	लघु रुखानी माइक्रोबरीन
Microlith	लघुपाषाणोपकरण

Miocene	मध्य-नूतन-युग
Missing Link	लुप्त कड़ी
Monolith	मेनहिर
Mutation	तात्त्विक परिवर्तन
Natural Selection	*प्राकृतिक निर्वाचन*
Neanderthal	नियण्डथल-मानव
Neanderthaloid	नियण्डथलसम
Neolithic/New Stone Age	नव-पाषाणकाल
Nomad	यायावर खानाबदोश
Oligocene	आदि नूतन-युग
Palaeolithic Age	पूर्व-पाषाणकाल
—Lower	प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल
—Middle	मध्य-पूर्व-पाषाणकाल
—Upper	परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल
Palaeozoic	प्राचीन-जीव-युग
Patriarchal	पितृसत्तात्मक
Peking Man	पेकिंग-मानव
Pithecanthropus Erectus	पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस
Pithecanthropus Pekinensis	पेकिंग मानव
Pleistocene Period	प्लीस्टोसीन प्राति-नूतन-युग
Pliocene	प्लीयोसीन अति-नूतन-युग
Pluvial Age	वर्षायुग
Post Glacial Age	हिमोत्तर युग
Potter's Wheel	कुम्हार का चाक
Pottery	मृदभाण्ड
Pre-dynastic	प्राग्वंशीय
Prehistoric	प्रागैतिहासिक
Priest	पुरोहित पुजारी
Primary Period	प्राथमिक काल
Primate	नर-वानर परिवार
Primitive	आदिम
Proterozoic	प्रारम्भिक-जीव-युग
Proto-historic	पुरा-ऐतिहासिक

Protozoa	एककोषी जीव
Quaternary Period	चतुर्थ काल
Reed	रीड, नरकुल
Reptile	सरीसृप
Ring Method	छल्लाविधि
Rock Shelter	गुहा आश्रय
Scraper	खुर्चन-यन्त्र
Seal	मुद्रा, मुहर
Secondary Period	द्वितीयक युग
Sediment	चूर्ण
Sedimentary Rock	स्तरीय चट्टान
Sickle	हसिया
Side Scraper	पार्श्व-खुर्चन यन्त्र
Sinanthropus	चीनी-मानव
Site	स्थल
Solar Radiation	सौर्यिक विकिरण
Solar System	सौर मण्डल
Solo Man	सोलो मानव
Somatic	दैहिक
Steinheim Man	स्टीनहीम-मानव
Stone Age	पाषाणकाल
Struggle for Existence	जीवन-संघर्ष
Suggestion Picture	संकेत चित्र
Survival of the Fittest	योग्यतम का अनुजीवन
Swanscombe Man	स्वैनकोम्ब मानव
Sympathetic Magic	सादृश्यमूलक जादू
Technical Skill	विज्ञान-कौशल
Tell	टीला
Tertiary Period	तृतीयक युग
Tomb	समाधि
Tool	उपकरण
Totem	टोटम
Tumulus	टुमलस्
Vertebrate	पृष्ठवंशी
Wadjak Man	वादजक मानव

पठनीय सामग्री

Burkitt, M C, *The Old Stone Age* (1949)

Burkitt, M C, *Prehistory* (1925)

Burkitt, M C, *Our Early Ancestors* (1929)

Clark, J Desmond, *The Prehistory of Southern Africa* (1959)

Clark, J G D, *From Savagery to Civilization* (1946)

Coon, Carlton, S, *The Story of Man* (1955)

Cole, S, *The Prehistory of East Africa* (1954)

Childe, V G, *What Happened in History* (1957)

Childe, V G *Man Makes Himself* (1955)

Childe, V G, *The Dawn of European Civilization* (1957)

Childe, V G, *The Prehistory of European Society* (1958)

Childe, V G *New Light on the Most Ancient East* (1952)

Childe, V G, *Bronze Age* (1930)

Fairservis, W A *The Origins of Oriental Civilization* (1959)

Frankfort, H, *The Birth of Civilization in the Near East* (1955)

Ghirshman, R *Iran* (1954)

Hoebel E Adamson, *The Man in the Primitive World*

James E O, *Prehistoric Religion*

Kuhn, H, *On the Track of Prehistoric Man* (1958)

Leakey, L S B, *Adam's Ancestors* (1953)

Mcburney C B M *The Stone Age of Northern Africa* (1960)

Mikhail N, *The Origin of Man* (1959)

Montagu, A, *Man His First Million Years* (1959)

Montagu, A *An Introduction to Physical Anthropology* (1951)

Marjorie and Quennell, *Everyday Life in Prehistoric Times* (1959)

Oakley, P Kenneth *Man the Tool Maker* (1958)

Piggott, S *Prehistoric India* (1950)

Singer, Holmyard and Hall *A History of Technology*, Vol I (relevant Chapters) (1956)

Wheeler M, *Early India and Pakistan* (1959)

Wells, H G *The Outline of History* (1956)

Zeuner, F E, *Dating the Past* (1958)

अनुक्रमणिका

ख

ग

इ

ई

उ

ऊ

ऋ

ए

ऐ

ओ

औ

क

भ

म

य

र